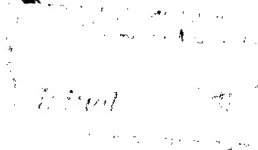
बापू की बात

दामोदरदास खंडेलवाल

श्रीहरिः

बापू की बात



लेखक

दामोदरदास खंडेलवाल

प्रकाशक

साहित्य-सदन,

चिरगाँव (झाँसी)

प्रथम संस्करण

२००४ वि०

मूल्य

१)

श्रीरामकिशोर गुप्त द्वारा

साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित ।

निवेदन

बापू के सम्बन्ध में न जानें कितना लिखा जा चुका है और न जानें कितना कुछ लिखा जाता रहेगा। सौभाग्य से मैं भी उनके यत्किञ्चित् सम्पर्क में आया था। पर मुझे पता न था कि यह पुस्तिका कभी मेरे द्वारा भी लिखी जा सकेगी। फिर भी यह आज पाठकों के सामने उपस्थित है। बात यह हुई कि अभी कुछ दिनों पहले मुझे चिरगाँव जाने का सुअवसर मिला था। वहाँ मेरे मित्र गुप्त बन्धुओं ने मुझे प्रेरित किया कि बापू के सम्बन्ध के अपने संस्मरण मैं लिख दूँ। उनकी दृष्टि में ऐसी रचनाओं का साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है। जन सामान्य ने किसी महापुरुष को अपने किस दृष्टि कोण से देखा है, इसकी उपेक्षा इतिहासकार भी नहीं कर सकता।

उनके इस प्रोत्साहन और आग्रह के कारण ही यह पुस्तिका लिखी गई है। यदि इससे मैं अपने पाठकों को भी तुष्ट कर सकूँ तो अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

मेरी इच्छा थी, प्रकाशित होने के पहले इसे बापू को दिखा लूँ। परन्तु इन दिनों वे जिन महत्कार्यों मे लगे हैं, उसके कारण यह सम्भव नहीं हो सका। फिर भी मैंने अपनी ओर से पूरा प्रयत्न किया है कि अप्रामाणिक कुछ भी न लिखा जाय।

५३।११२ लकसा
बनारस,
ता० १ अक्टूबर १९४०

दामोदरदास खंडेलवाल

पहली भेट

महात्मा गांधीजी से मिलने की मेरी बड़ी इच्छा थी । तरह तरह की बातें उनके सम्बन्ध में सुनी थीं । ख़ास करके वे बातें कि चाहे जिससे वे नहीं मिलते; अकेले में नहीं मिलते, क्योंकि हर वक्त उनके आस पास मेला लगा रहता है; विना विशेष कार्य के भी नहीं मिलते और विलायती वस्त्रधारी से भी नहीं मिलते ! निर्धारित समय के लिए पहले से निश्चित समय पर ही मिलते हैं । इन सब बातों से उत्कण्ठा और भी बढ़ी कि महात्माजी से मिला अवश्य जाय ।

सन् १९२५ में १६ जून के दिन स्वर्गीय चित्तरंजनदासजी की मृत्यु दार्जिलिंग में हुई थी। गांधीजी कलकत्ता में उन्हींके स्थान पर रस्सा रोड भवानीपूर में, जिसका नाम अब आशुतोष मुकर्जी रोड है, कुछ समय के लिए ठहरे थे। मैं भी उस समय कलकत्ता में ही नं० ५० हरीश मुकर्जी रोड भवानीपुर में रहता था। उक्त दोनों स्थान एक मील के अन्दर थे। साहस करके १९२५ के जुलाई महीने में मैंने एक दिन एक पोस्टकार्ड महात्माजी को लिखा कि मैं आपसे मिलना चाहता हूँ। एकान्त में केवल मैं और आप रहें। समय तीस मिनट का चाहिए। हिन्दू मुसलमान समस्या पर बात करनी है। यह बात विशेषरूप से स्पष्ट करके लिख दी थी कि मैं विलायती वस्त्र पहनता हूँ, अतएव उन्हीं वस्त्रों में मिलूँगा।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि उन दिनों मैं विदेशी वस्त्रों को ही सभ्यता सूचक मानता था। जनता में भी उसीकी धाक थी। कलकत्ता के अंग्रेजी फर्म रेंकिन कम्पनी

पर ही मेरे सूट आदि बनाने का भार था। इसमें मेरा बहुत द्रव्य खर्च होता था। कभी कभी मैं धोती-कुरता भी पहनता था।

पोस्ट कार्ड लिखते समय मेरी धारणा थी कि यह महात्माजी तक नहीं पहुँच सकेगा और बीच में ही रद्दी की टोकरी में डाल दिया जायगा। परन्तु दो तीन दिन के बाद स्वर्गीय महादेव देसाई का लिखा हुआ एक पत्र डाक से आगया। पढ़कर आश्चर्यमय प्रसन्नता हुई कि मुझे एक ही दो दिन के बाद सवेरे सात बजे महात्माजी से भेट करने की अनुमति मिल गई है। अब नई घबराहट यह थी कि इतने बड़े आदमी के पास जाकर मैं क्या बात करूँगा। कार्ड लिखते समय तीस मिनट का समय बिना सोचे समझे ही चाहा था। अब सोचने लगा कि इस लम्बे समय के लिए बात क्या होगी। हिम्मत जैसे डगमगा गई। जी में आया, समय की स्वीकृति देने के लिए धन्यवाद देकर लिख दूँ कि अब नहीं आ सकूँगा। पर उसी समय फिर

ख्याल हुआ कि ईश्वर की कृपा से ही यह अद्वितीय अवसर हाथ आया है। इतने बड़े व्यक्ति से अकेले में तीस मिनट वार्तालाप करने का सौभाग्य मिलेगा और वह भी हिन्दू-मुसलिम जैसे महत्वपूर्ण विषय पर। अतएव वहाँ मुझे उपहासास्पद ही क्यों न होना पड़े, परन्तु इस मौके को छोड़ना नहीं चाहिए। अन्तिम निश्चय मैंने यही किया कि मैं अवश्य जाऊँगा।

विदेशी वस्त्रों का धोती कुर्ता पहनकर मैं निर्धारित तिथि पर निश्चित समय के दो मिनट पहले महात्माजी के निवास स्थान पर पहुँचा। स्वयं-सेवकों का पहरा नीचे से ऊपर तक था। श्रीमहादेव देसाई का पत्र दिखाने पर एक मिनट के अन्दर ही भीतर का बुलावा आ गया और तत्काल ही मुझे महात्माजी के सम्मुख उपस्थित किया गया।

आज जब ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ, तब उस घटना को २० बरस से ऊपर हो चुके हैं। उस समय का सभी कुछ ज्यों का त्यों याद रहना

कठिन है। फिर भी कुछ बातें ऐसी होती हैं, जिनकी छाप कभी नहीं मिटती। मैंने महात्माजी को देखा और मेरे हाथ प्रणाम के लिए अपने आप ऊपर उठ गये।

महात्माजी के पास उस समय श्रीमती सरोजिनी नायडू बैठी हुई थीं। मैंने सोचा शायद एकान्त में बात नहीं होगी। परन्तु उसी समय श्रीमती नायडू वहाँ से उठ कर चली गईं और महात्माजी का संकेत पाकर मैं उनके सामने बैठ गया।

महात्माजी ने मधुरवाणी से हिन्दी में कहा—कहिए!

कहाँ से क्या प्रारम्भ करूँ? मुझे प्रतीत हुआ कि हृदय में धड़कन शुरू हो गई है। सिर में चक्कर-सा आ गया। घबराहट में मुँह से निकला—आपसे अँगरेजी में बात करूँ या हिन्दी में?

उन्होंने उत्तर दिया—मैं हिन्दी अच्छी तरह समझ लेता हूँ।

इस समय तक मैं प्रकृतिस्थ हो चुका था। मैंने तत्काल ही मुख्य बात छेड़ दी और लगभग १५ मिनट तक बोलता रहा। मेरे कथन का सारांश यह है—जिस तरह के ऐक्य का उपदेश आप देते हैं, उससे मैं सहमत नहीं हूँ। शेर और बकरी का मेल असम्भव है। शेर बकरी की तरह हो जाय या बकरी शेर की तरह, तभी दोनों में मेल हो सकता है। हिन्दू दब्बू और कायर हैं, बकरी की तरह। और मुसलमान दबङ्ग और बहादुर हैं, शेर की तरह। जब तक यह स्थिति रहेगी, दोनों बराबरी पर नहीं आ सकते। उनमें मेल नहीं हो सकता।

महात्माजी शान्ति और गम्भीरता से मेरी बातें सुनते रहे। मेरा वक्तव्य समाप्त होने पर उन्होंने मुझे अपना अहिंसा का सिद्धान्त समझाया। मेरी वाणी खुल चुकी थी। उनका कथन समाप्त होने पर उनके तर्कों को काटने के लिए मैं अपनी युक्तियाँ देने लगा, परन्तु थोड़ी देर में मैंने अपनी रिस्टवाच देखी और बीच में ही रुक गया। कहा—निर्धारित

तीस मिनट का समय पूरा हो गया है, इसलिए अब आज्ञा चाहता हूँ। परन्तु और बातें तो बाकी रह गई हैं।

महात्माजी ने कहा—अँगरेजी दैनिक "इंग्लिशमैन" के सम्पादक से मेरा समय इसके बाद ही निर्धारित है। वे आने ही वाले हैं। किन्तु जब तक वे आ न जायँ, तब तक आप कहते चलिए।

मैंने फिर से अपना वक्तव्य आरम्भ किया ही था तब तक सूचना मिली कि "इंग्लिशमैन" के सम्पादक आ गये हैं। उठते उठते मैंने कहा—महात्माजी समय पूरा हो गया है और मेरी बात पूरी नहीं हुई। सो इसके लिए फिर कभी देखा जायगा।

महात्माजी ने गम्भीरता से उत्तर दिया—आपकी बातचीत रोचक है। आप फिर से आइएगा।

मैंने आगे के लिए समय माँगा, इस पर महात्माजी ने "महादेव" के पास जाने की बात कही।

महात्माजी के कमरे से उठकर स्वयं सेवकों से मैंने "महादेव" का पता पूछा। पास का जो कमरा

बताया गया, वहाँ जाकर देखा कि एक साधारण लम्बा सा व्यक्ति बैठा है। उसके इधर उधर कागद पत्र हैं और कुछ रुपये पैसे भी रक्खे हैं। मैंने पूछा—महादेवजी आपका ही नाम है?

उत्तर मिला—हाँ, कहिए।

मैंने बताया कि आज के निर्धारित समय में महात्मा गांधीजी से मेरी बातचीत पूरी नहीं हुई है। महात्माजी ने स्वयं आज्ञा दी है कि मैं उनसे फिर मिलूँ, सो उनसे मिलने के लिए मुझे फिर से समय चाहिए।

महादेवजी ने कहा—सूचना आपके पास डाक से पहुँच जायगी।

कायदे की बात थी! घर जाकर मैंने भी कायदा बरता। महात्माजी को पत्र लिखा कि आज की मुलाकात में जैसा तै हुआ है उसके अनुसार प्रार्थना है कि अबकी बार मुझे ६० मिनट का समय दीजिए। हिन्दू-मुसलिम समस्या के अतिरिक्त मुझे अन्य विषयों पर भी बातचीत करनी है। उन सबका

संकेत करना भी नहीं भूला, किन्तु इस समय वे ध्यान से हट चुके हैं।

चार छः दिन के बाद उस समय के महादेवजी और आगे के महादेव भाई का एक कार्ड मिल गया, जिसमें एक या दो दिन के बाद ही आगे की किसी तिथि पर मुझे सुबह ७ बजे बुलाया गया था।

दूसरी वार

मैं निश्चित समय पर पहुँचा और पहले की ही भाँति महात्माजी से वार्ता आरम्भ हुई। हिन्दू-मुसलिम विषयक चर्चा पूरी हुई, परन्तु महात्माजी की बातों से न तो मैं सहमत हुआ और न सन्तुष्ट ही। और बहुत सी बातचीत के बाद मैंने पूछा—अभी आप कब तक कलकत्ते में रहेंगे।

उन्होंने बताया—अभी कुछ दिन और ठहरना है। किन्तु इस स्थान पर नहीं, अन्य कहीं ठहरूँगा। कहाँ ठहरना है, इसका निश्चय नहीं है। अन्यत्र जाना इसलिए जरूरी है कि श्रीमती वासन्ती देवी अब

विधवा हैं, दुखी हैं और मेरे कारण सब समय यहाँ भीड़ लगी रहती है। उन्हें कष्ट होता होगा।

मैंने प्रार्थना की—तब आप मेरे पास ठहरें। परन्तु इसके पहले आप मेरा स्थान देख लें कि वहाँ ठहरने में आपको सुविधा होगी या नहीं। आप यदि मेरे यहाँ ठहरेंगे तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा। यद्यपि मैं इस योग्य नहीं हूँ कि आपका आतिथ्य कर सकूँ।

महात्माजी ने कहा—मुझे ठहरने में आपत्ति न होगी। महादेव जाकर स्थान देख आवेगा।

मैंने कहा—महादेव वगैरह से ठीक न होगा। आप ही स्वयं कष्ट करें।

"कोई हर्ज नहीं, महादेव सब कुछ कर लेगा"—कहकर उन्होंने आवाज दी—"महादेव !" महादेव के आने पर महात्माजी ने गुजराती भाषा में उनसे कहा—यह एक गृहस्थ सज्जन हैं। अपने यहाँ ठहरने को मुझे निमन्त्रित करते हैं। अपने को तो अन्यत्र कहीं ठहरना ही है, अतएव तुम इनके यहाँ

जाकर इनका घर देख आओ। और यदि ठीक हो तो इन्हीं के यहाँ ठहरने का ठीक हो सकता है।

महादेव देसाई को न तो मैं जानता था और न मैंने उनका नाम ही सुना था। रंग ढंग से उन्हें मैंने महात्माजी का कोई निम्नकोटि का क्लर्क समझा इसलिए उनका मेरे पास शाम का आना, महात्मा गांधी के ठहरने का मकान देखने के लिए, मैंने पसन्द नहीं किया। मुझे क्या पता था कि महादेव भाई गांधीजी के दाहिने हाथ हैं और आगे चलकर उनको मुझे डिपुटी गांधी का खिताब देना पड़ेगा। उन्होंने मेरा पूरा पता और मेरी सुविधा का समय पूछा।

मैंने शाम के ६ बजे का समय दिया। किन्तु उन जैसे निम्न कर्मचारी को लाने के लिए अपनी मोटर भेज देने की कोई आवश्यकता उस समय मैंने नहीं समझी।

निर्धारित समय पर महादेवजी स्वयं ट्राम द्वारा एवं पैदल चल कर मेरे यहाँ आ पहुँचे। उन्हें मैंने

मकान दिखा दिया और यह तय हुआ कि महात्माजी और उनके साथी कौन कहाँ ठहरेंगे।

यह सब हो जाने के बाद उन्होंने कहा कि वे मुझसे बातें करना चाहते हैं। लगभग डेढ़ घण्टे हम दोनों में बातें हुईं। मैंने महात्माजी के सम्बन्ध में, और उन्होंने मेरे सम्बन्ध में अर्थात् एक पक्ष ने दूसरे पक्ष के सम्बन्ध में जानकारी हासिल की। मैं किस जाति का हूँ, मेरे विचार क्या हैं, परिवार में कौन कौन किस विचार के हैं, रहन सहन का तरीका,आमदनी का अन्दाजा-इत्यादि सब कुछ उन्होंने मेरे सम्बन्ध में पूछा। महात्माजी के सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि उनके ठहराने पर कामोड का प्रबन्ध करना होगा। और महतर मकान के अन्दर आवेगा। स्त्रियों का पर्दा छुआछूत का विचार नहीं करना होगा। सर्वजाति के लोगों का आना-जाना लगा रहेगा। उन सब के प्रति सम भाव वर्तना होगा। उन्होंने यह भी बताया कि महात्माजी को मेहमान बनाने वालों के पीछे

पुलिस के लोग लग जाते हैं और उन्हें तंग करते हैं।

मैंने कहा—मैं इन सब बातों को मानने वाला हूँ। बर्ताव भी मेरा ऐसा ही है। इन शर्तों में मेरे लिए कठिनाई नहीं है। और न मैं राजनीतिक हूँ और न अपराधी। पुलिस का डर मुझे नहीं है।

यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि मेरे रहन सहन का तरीका, घर की स्वच्छता और प्रत्येक वस्तु का व्यवस्थित रूप से रहना, महादेव भाई ने पसन्द किया है। और उन्हें आशा है गांधीजी भी पसन्द करेंगे। यहाँ रहकर उन्हें कोई कष्ट नहीं होगा।

इसे मैंने अपना अहोभाग्य समझा और इसके लिए महादेव भाई को मैंने धन्यवाद दिया।

उन्होंने खादी के सम्बन्ध में मेरे विचार पूछे। मैंने कहा—खादी मुझे बिलकुल नापसंद है। एकदम गँवारू और भद्दी! वर्षा के दिन हों तो एक एक दो दो दिन तक सूखने का नाम नहीं लेती। विलायती वस्त्रों की बात ही दूसरी है, देखने में स्वच्छ और सुन्दर। मैं उन्हे भी विलायती वस्त्र ही

व्यवहार के लिए दूँगा। क्योंकि खादी में मेरा विश्वास रत्ती भर भी नहीं।

महादेव भाई ने पूछा कि खादी के विषय में मुझे कोई जिद तो नहीं है और खुला विचार रख कर उसके विषय में कुछ सुनने समझने को भी क्या मैं तैयार रह सकूँगा?

मैंने कहा—मुझे किसी बात का दुराग्रह नहीं है। लेकिन जिस चीज को मैं ठीक समझता हूँ, उसे ठीक कहता हूँ, जिसे गलत समझता हूँ उसे गलत कहता हूँ। भीतर कुछ, बाहर कुछ, यह मुझे पसन्द नहीं। झूठ से, बनावट से, नफरत है। यदि मैं खादी का कायल हो जाऊँ, तो उसे मान दूँगा। उसे अच्छा समझूँगा तो अच्छा कहूँगा। परन्तु इसकी आशा नहीं है। उत्तम वस्तु ही महात्माजी को व्यवहार के लिए देना चाहता हूँ। और विदेशी वस्त्र ही मेरी दृष्टि में उत्तम हैं।

महादेव भाई ने मेरी बातें सुन लीं। तब मैंने पूछा—कब आऊँ महात्माजी का निश्चय सुनने

के लिए ?

दूसरे दिन सात बजे का समय मुझे दिया गया। निश्चित समय पर महात्माजी से एकान्त में भेंट हुई। उन्होंने कहा—महादेव से सब हाल मालूम हो गया है। आपके यहाँ ठहरने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु श्रीमती वासन्ती देवी से पूछकर अन्तिम निर्णय कल होगा।

बड़ी प्रसन्नता हुई। दूसरे दिन उसी समय महात्माजी के निकट जा पहुँचा। तब उन्होंने बताया कि श्रीमती वासन्ती देवी जोरदार आग्रह करती हैं। उनका कहना है, मैं यहीं ठहरा रहूँ। वे मुझे अन्यत्र नहीं जाने देंगी, तब अन्यत्र जाना नहीं हो सकता।

मुझे बड़ा दुःख हुआ और मेरा सारा उत्साह फीका पड़ गया। मैंने कहा—मैं बड़ी भारी आशा लेकर आया था, परन्तु उस पर पानी पड़ गया है। कुछ क्यों न हो श्रीमती वासन्ती देवी को भी दुखी करना ठीक नहीं है, क्योंकि दास महोदय की मृत्यु हाल ही में हुई है। सो इस समय तो आपका यहीं

रहना ठीक है, किन्तु अब इसके बाद आप जब कलकत्ते पधारें तो मेरे ही पास ठहरें। यह वचन मैं आपसे चाहता हूँ।

उन्होंने कहा—वचन देना तो मुश्किल है, किन्तु मैं आपकी बात ध्यान में रक्खूँगा।

मेरे लिए यही बहुत था। मैं चला आया।

घर के लोगों को और मुझे भी बड़ी निराशा हुई कि इस वार महात्माजी मेरे घर आते आते रह गये। इस वार खादी के विषय में उनके साथ मेरी कोई बात नहीं हुई और न उन्होंने मेरे विलायती वस्त्रों को लक्ष्य करके ही कुछ कहा।

मेरा निमन्त्रण

सन् १९२६ के नवम्बर मास में किसी अखबार में यह समाचार पढ़ा कि गोहाटी में होने वाली कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिए महात्माजी कलकत्ते होते हुए जायँगे।

अपने पूर्व निश्चय के अनुसार महात्माजी इन दिनों लगभग एक वर्ष तक साबरमती आश्रम में विराजते थे। बाहर का कोई दौरा उन्होंने नहीं किया था। अतएव बाहर के लोगों में उनके दर्शन की उत्सुकता और भी अधिक थी।

युक्तप्रान्त के पुरकाजी जिला मुजफ्फरनगर निवासी श्रीबलबीरसिंह अग्रवाल इन दिनों मेरे सेक्रेटरी

के रूप में काम करते थे। ये सज्जन कुछ वर्ष पूर्व साबरमती आश्रम में रह चुके थे। अतएव महात्माजी तथा उनके अन्य सहकर्मियों के साथ उनका पूरा परिचय था।

मैंने तुरन्त एक पत्र महात्माजी को लिखा और उन्हें याद दिलाया कि पिछली बार श्रीमती वासन्ती देवी के यहाँ आप से मेरी बात हुई थी। मैंने प्रार्थना की कि आप अबकी बार मेरे यहाँ ही ठहरें। उनका उत्तर आया कि साथियों में मुसलमान और अन्य धर्मावलम्बी बहुत-से होंगे, इसलिए आप के यहाँ ठहरना ठीक न होगा।

इस बार श्रीबलवीरसिंहजी ने भी मेरे साथ महात्माजी को निजी पत्र लिखा और आग्रह किया कि इस बार वे मेरे यहाँ ही ठहरें। अपने पत्र में मैंने जोर देकर कहा था कि धर्म और जात-पाँत की बाधा मेरे लिए कुछ नहीं है। जितने भी व्यक्ति हों मेरे यहाँ ही रहें। नहीं तो मुझे बहुत दुःख होगा।

कुछ पत्र और तारों का आदान-प्रदान और

हुआ। और इसके बाद अन्तिम निश्चय हो गया कि महात्माजी अपने दल के साथ मेरे यहाँ ही ठहरेंगे। उन पत्रों और तारों की प्रतिलिपि अब मेरे पास नहीं है। क्योंकि सन् १९३४ के जनवरी की ४ तारीख को मैंने कलकत्ते की अपनी अन्तिम जायदाद बेचकर वहाँ से चिरकाल के लिए बिदा ली। तब मेरे रहने की कोई जगह दुनिया में ठीक न थी कि जहाँ मैं अपने कागद-पत्र रखता। सन् १९०८ से सन् १९३४ तक की अपनी डायरी के साथ मैंने अपने सब कागद और पत्र व्यवहार जला दिये थे। अँगरेजी और हिन्दी की पुस्तकें इधर-उधर वितरित कर दी थीं।

महात्माजी की ओर से महादेव भाई ने मुझे एक लम्बी सूची भेजी थी कि उनके साथ कौन कौन व्यक्ति होंगे। मेरी जिज्ञासा के उत्तर में मुझे यह भी बताया गया था महात्माजी और उनके साथी किस समय और क्या भोजन करेंगे। आने वाले सज्जनों के नाम सम्भवतः निम्नलिखित हैं:—

बा, श्री देवदास गांधी, मौलाना मुहम्मद अली, मौलाना शौकतअली, बम्बई या अन्यत्र के दो एक अन्य मुसलमान सज्जन, श्री दादा भाई नौरोजी की पौत्री श्रीमती पेरिन केप्टन, श्रीमहादेव देसाई एवं अन्य कुछ सेक्रेटरी। सब १४-१५ के लगभग व्यक्ति।

महात्माजी के भोजन के लिए आधा सेर बकरी का दूध, नारंगी और अंगूर अपेक्षित थे। समय था सवेरे के ६ एवं १० बजे और साँझ को ५ बजे। गाय भैंस का दूध प्राप्त करना तो सहज था, परन्तु कलकत्ता शहर में बकरी का दूध मिलना कठिन समस्या थी। ऐसी बकरी के शुद्ध दूध की खोज थी, जो नीरोग और हृष्ट पुष्ट हो। क्योंकि मेरा निश्चित मत था कि महात्माजी के आहार के लिए वही वस्तु उपस्थित होनी चाहिए जो सबसे अच्छी हो। बकरी के दूध के सम्बन्ध में ईश्वर ने सहायता दी। मेरे स्थान से दो मकान के बाद श्री भोलानाथ चटर्जी नामक एक धनी ठेकेदार सज्जन रहते थे। उन्हें जानवरों का बड़ा शौक था और उनके यहाँ मुर्गी से

लेकर बकरी, गाय, भैंस और साँड तक थे। उन्होंने महात्माजी के लिए शुद्ध दूध देने का वचन देकर स्वयं कृतज्ञता का अनुभव किया।

निश्चित तिथि पर महात्माजी के लिए मैं स्टेशन पर गया। एक बंगाली मित्र पड़ौसी थे। उनकी बड़ी मोटर कार इस अवसर के लिए मैंने प्राप्त कर ली थी।

आतिथ्य

बंगाल नागपुर रेलवे की डाकगाड़ी से ता० २३ दिसम्बर १९२६ को सदलबल महात्मा गांधीजी हबड़ा स्टेशन पहुँचे।

मुझे स्पष्ट अनुभव न था कि महात्माजी के लिए कितनी भीड़ होती है। स्टेशन पर पहुँचा तो दिखाई दिया, अपार जन-समुद्र है।

मैं जो महात्माजी का आतिथेय बनने जा रहा था, देखकर चकित रह गया कि उस सौभाग्य का सामान्य अंश ही मेरे हिस्से में पड़ा है। महात्माजी मेरे नहीं सारे के सारे कलकत्ता शहर के अतिथि होने

जा रहे हैं । इसीसे यह विशाल जन समुदाय नगर की विशालता का प्रतिनिधित्व करके बहुत पहले से उन्हें लेने के लिए उपस्थित है । मैं तो जैसे पिछड़ गया हूँ ।

समुद्र में तूफान आ जाय, तब उसकी जो दशा होती है, वही उस भीड़ की थी । जड़ीभूत होकर ही उस स्थिति का सामना किया जा सकता था । और मेरी अवस्था उस समय सचमुच वैसी थी, जैसी कि पानी के ऊपर उतराने वाले किसी काष्ठ खण्ड की वैसे में हो सकती है । इधर उधर की रेल पेल और धक्कम धक्काई में मेरी चेतना के लुप्त होने का उपक्रम था ।

छोटे-बड़े असख्य स्वरों के कोलाहल को अपने बल से नीचा करके रह रह कर जयघोष सुनाई दे रहा था—भारत माता की जय, महात्मा गांधी की जय !

जनता के इस भयंकर उन्माद को सह सकने की शक्ति, भारतमाता में या फिर महात्मा गांधी में ही

हो सकती थी। यह सब मेरे बूते के बाहर था। आगे बढ़ सकने में मैंने अपने को नितान्त असमर्थ पाया। जहाँ सबके सब किसी दूसरे का विचार न करके आगे बढ़ने की धुन में मस्त हों, वहाँ बड़े बड़े तक हार जायँ तो भी आश्चर्य नहीं है। मेरी तो बात ही क्या। मैंने कई परिचित व्यक्तियों से निवेदन किया कि मुझे खैरियत से महात्माजी के निकट पहुँचा दें। परन्तु उस समय उनकी अवस्था भी कुछ सन्तोष-जनक न थी।

इसी समय मुझ तक समाचार पहुँचा कि महात्माजी मुझे पूछ रहे हैं। श्री पद्मराज जैन आदि सज्जनों ने जो मुझसे भली भाँति परिचित थे, मुझे किसी तरह उन तक धकेल कर पहुँचाया। प्रणाम करके मैंने प्रार्थना की कि मोटर तैयार है।

स्वयंसेवकों के कवच-मण्डल में सुरक्षित होकर किसी तरह कार तक पहुँचे। पीछे की सीट पर महात्माजी और बा को बिठाकर मैं ड्राइवर की बगल में आगे बैठ गया। मोटर चलने को ही थी

कि मौलाना मुहम्मद अली इसी समय कूद कर महात्माजी के बगल में मोटर पर आ डटे। उनका इस तरह आना मुझे रुचिकर नहीं प्रतीत हुआ। किन्तु मेरी रुचि या अरुचि को लेकर उस समय हो ही क्या सकता था।

मौलाना मुहम्मद अली को मैं तब से जानता था, जब मैं कलकत्ते के मैसर्स बी. एन. बसू कम्पनी, सालिसिटर्स के यहाँ एसिस्टेन्ट था। उनके द्वारा सम्पादित 'कामरेड' नामक पत्र में प्रकाशित किसी लेख के कारण उनके ऊपर कलकत्ता हाईकोर्ट में मानहानि का मुकद्दमा चला था। इसी सिलसिले में मौलाना साहब उक्त आफिस में कई बार आये थे। बसू कम्पनी के सीनियर श्रीभूपेन्द्रनाथ वसु ही उनके वकील थे।

रास्ते में महात्माजी से उनका कार्यक्रम पूछा तो मालूम हुआ कि घर पहुँचते ही भोजन करके उन्हें श्रीमती वासन्ती देवी के यहाँ जाना है। हमारे घर पहुँचने के कुछ ही देर बाद महादेव भाई और

देवदास आदि भी पहुँच गये। टैक्सी आदि का प्रबन्ध करके सामान तथा अन्य लोगों को ले आने का काम स्टेशन पर बलवीरसिंह एवं अन्य दो एक सज्जनों को सौंप दिया था।

महादेव भाई ने बताया कि विशिष्ट व्यक्तियों को विना रोक टोक महात्माजी के पास जाने दिया जाय। अन्यान्य मिलने वालों को नीचे के कमरे में बैठाकर ऊपर उनका समाचार पहुँचाना चाहिए। महात्माजी के आने के कुछ ही देर बाद पूज्य श्री मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, श्रीजमनालाल बजाज एवं श्रीघनश्यामदास बिड़ला आदि महानुभाव पधारे। मैं उन्हें जानता था, इसलिए पूर्व निर्देश के अनुसार उन्हें ऊपर जाने दिया गया। श्रीदेवदास गांधी को मैं जानता नहीं था। वे ऊपर जाने लगे तो मैंने उन्हें रोका। वे प्रसन्नतापूर्वक नीचे के कमरे में बैठ गये। इसी तरह एक दूसरे सज्जन को भी मैंने वहीं बैठा दिया। उन लोगों के परचे ऊपर पहुँचे तो महादेव भाई तुरन्त नीचे

आये। उन्होंने कहा—इन्हें नहीं जानते? ये हैं श्रीदेवदास, बापू के पुत्र। और ये,—इन्हें भी नहीं जानते? ये हैं श्री श्रीनिवास आयंगर, गोहाटी कांग्रेस के निर्वाचित सभापति। इन्हें रोकना नहीं था।

मेरी स्थिति स्पष्ट थी। जिन्हें न जानता होऊँ उन्हें किस प्रकार महात्माजी तक जाने देता। देवदास जी और श्री आयंगर ने इसके लिए मेरी सराहना ही की और कहा—इसी प्रकार का प्रबन्ध महात्माजी के लिए होना उचित है।

श्रीहीरालाल गांधी, महात्माजी के सबसे बड़े पुत्र हैं। उनके लिए मुझे सावधान कर दिया गया था। पहले से ही मैंने उनके विषय में बहुत कुछ सुन रक्खा था। कुछ देर बाद वे भी पहुँचे। बा की प्रीति उनकी ओर अधिक थी और वे भी बा को बहुत मानते थे। बा ने उन्हें भोजन कराया। महात्माजी से तो वे मिले तक नहीं। जाते समय उन्होंने मुझसे १०) रु० माँगे। दे सकता था, पर मैंने दिये नहीं। इस सम्बन्ध में ऐसा कोई काम मैं

उस समय नहीं करना चाहता था जो बापू की रुचि का न हो। सच तो यह है, और उसे मुझको स्वीकार भी कर लेना चाहिए कि जब तक वे रहे, मैंने उनकी और उनके साथ अपने कमरे की चौकसी जासूस की तरह की।

दोपहर के समय महात्माजी ने श्री जमनालाल जी बजाज से कहा—खादी के विषय में इन्हें कुछ समझाओ। सेठजी से कुछ देर तक वार्तालाप हुआ, किन्तु मेरी समझ में उनकी बात नहीं आई। मैंने खादी की बुराई ही की। अन्त में उन्होंने मुझसे कहा—ऐसा कोई कार्य आप जानते हों तो बताइए, जिसमे करोड़ों की संख्या में नर-नारी बिना अपना घर छोड़े कार्य में लगे रहें और कमाते रहें, कमाई चाहे थोड़ी ही हो। मैंने इस दृष्टिकोण से कभी न सोचा था। अतएव मैं उत्तर न दे सका। महात्माजी ने अपने हस्ताक्षर से युक्त श्री पुणताम्बेकर की लिखी हुई 'हाथ कताई और बुनाई' नामक पुस्तक मुझे पढ़ने को दी। इस पुस्तक पर लेखक को सहस्र

रुपये का पुरस्कार दिया गया था।

तीन चार घंटों में लोगों को पता चला कि महात्माजी मेरे यहाँ ठहरे हैं। लोगों को यह पता इतनी देर में इस कारण लगा कि मैं कोई प्रसिद्ध व्यक्ति न था। देखा, धीरे धीरे हजारों की भीड़ मेरे स्थान के सामने एकत्र हो गई है। हरीश मुकर्जी रोड के बहुत चौड़े रास्ते और फुट पाथ पर दूर दूर तक नरमुण्ड ही नरमुण्ड दिखाई देने लगे। सवारियों का आवागमन रुक गया।

भीड़ महात्माजी के दर्शन को व्याकुल थी। गांधीजी की जय का नारा बड़े जोर से लग रहा था। भीड़ की एक टोली ने प्रयत्न किया कि घर में प्रवेश करके महात्माजी का दर्शन कर लिया जाय। परन्तु मेरी ओर से इस कार्य में रुकावट डाली गई। फिर भी मैं डरा। क्योंकि खड़े खड़े भीड़ का धीरज टूट रहा था। दिखाई दे रहा था, मेरा प्रति-रोध अमान्य करके मकान में घुस पड़ने के लिए लोग कृत संकल्प हो उठे हैं।

तुरन्त ही ऊपर जाकर मैंने महात्माजी को सूचित किया । उन्हें क्या पता था कि नीचे कैसी क्या बीत रही है । सुनकर वे अपने काम में लगे रहे । तब मुझे कुछ जोर से कहना पड़ा—यदि आप शीघ्र ही ऊपर बरामदे में जाकर लोगों को दर्शन न देंगे, तो लोग अब भीतर घुसकर मकान नष्ट करने ही वाले हैं । आपका कष्ट आप स्वयं जान सकते हैं, परन्तु मुझे तो इससे महान कष्ट होगा ।

महात्माजी ऊपर बरामदे में जनता का अभिवादन करने के लिए हाथ जोड़ कर खड़े हो गये । दो चार शब्द भी उन्होंने कहे और खादी पहनने का उपदेश दिया । इस सबका असर जादू के जैसा हुआ । पुराण में पढ़ा था कि वसुदेव नवजात कृष्ण को हाथों पर लिये हुए आधी रात के समय यमुना पार कर रहे हैं । यमुना का जल प्रतिक्षण उमड़ रहा है । वह उमड़ता ही जाता है और जान पड़ता है कि कृष्ण और वसुदेव को उसने अपने में निमग्न किया कि अब ! परन्तु जल ने कृष्ण के चरणों तक

पहुँच कर उनका स्पर्श किया और तत्काल उसका पूर उतर गया। यही अवस्था उस भीड़ की थी। महात्माजी का दर्शन पाकर तुरन्त वह छँट गई।

किन्तु दो चार सौ की भीड़ तो बराबर ही रही।

बहुत से आदमियों ने मेरे पास आकर हाथ जोड़े और पैर तक पड़ गये कि महात्माजी तक उन्हें मैं जाने दूँ। उनकी प्रार्थना पर पसीज न उठना असम्भव था। परन्तु कर्तव्य पालन में कठोर हुए बिना काम नहीं चलता।

महात्माजी के बैठने के लिए विलायती वस्त्र ही बिछे थे। सबसे पहले घनश्यामदासजी बिड़ला ने ही शिकायत की कि यह अनुचित है। इससे महात्माजी का अपमान होता है इस अवसर के लिए खादी का व्यवहार ही ठीक था।

मेरा कहना था—इससे महात्माजी का अपमान नहीं होता। मुझे खादी नापसन्द है। और इतना ही नहीं विलायती वस्त्र मुझे अच्छे भी लगते हैं। इस

अवस्था में दिखाने के लिए ही यदि इस अवसर पर मैं खादी का व्यवहार करता तो यही बात महात्माजी के लिए अपमान की हो सकती थी। श्री बिरलाजी की भाँति पूज्य मालवीयजी महाराज ने भी इस सम्बन्ध में मुझे उलहना दिया था और उनसे भी मैंने यही कहा था।

दिन भर बड़ी चहल पहल रही। बड़े बड़े नेताओं और महानुभावों का आवागमन लगा ही रहा।

भोजन में दाल-भात, रोटी और तरकारियों का ही प्रबन्ध था। मौलाना आदि सज्जनों को यह सब रुचिकर न हो सका, किन्तु लाचारी थी।

गोहाटी के लिए प्रस्थान

दिन भर रहकर उसी शाम को महात्माजी सियालदह स्टेशन से गोहाटी गये। उनके साथ के सब लोग समय के पूर्व ही मेरे यहाँ से चले गये थे। सबसे पीछे केवल महात्माजी और महादेव भाई रह गये थे। जाने के कुछ पहले महादेव भाई ने पूछा— आप बापू के साथ स्टेशन जायेंगे? मैंने 'हाँ!' की कि बस वे भी चल दिये।

शिष्टाचार के नाते महात्मा गांधी जैसे मेहमान को स्टेशन पहुँचाना मेरे लिए जरूरी था। किन्तु इसका अनुमान मुझे न था कि इसमें कितना कष्ट हो सकता है।

ज्यों ही हमारी मोटर सियालदह स्टेशन के पास पहुँची त्यों ही दिखाई दिया कि अपार जनसमुद्र सामने है। चारों ओर नरमुंड ही नरमुंड दिखाई देते हैं। देखा परन्तु चेता फिर भी नहीं। शिष्टाचार के ही चक्कर में रहा। बापू उतरे और बढ़े प्लेटफार्म की ओर। मैं उनके पीछे पीछे चला। उनको तो भीड़ से बचाने के लिए पुलिस के यूरोपियन सार्जन्टों और सिपाहियों ने घेर लिया और मैं उस घेरे के बाहर रह गया। भीड़ के धक्कों में मेरी दशा यह हुई कि अब बेहोश हुआ और अब गिरा। गिरने में कसर ही क्या थी, परन्तु उसके लिए जगह भी तो हो। नीचे गिरने से बचने के लिए धक्का देने वालों का ही आसरा मिल रहा था।

जनता बावली हो गई थी। सब के सब पर छूने का पुण्य लूट लेना चाहते थे। कुछ लोग तो ऐसे थे जो निकट पहुँचने में असमर्थ होकर अपनी छड़ी या डंडा बढ़ाकर उसी के द्वारा बापू के चरण छू लेना चाहते थे! मैं बदहवास हो उठा। आशंका

थी कि छड़ियों और डंडों के अत्याचार से बापू के पैर लोहू-लुहान हो जायँगे। और अपने कुचल जाने का अन्देशा तो और भी अधिक था। एक स्थान पर मुझे ऐसा लगा कि यहीं गिरता हूँ और इसके बाद यहीं पिस जाने में क्या देर है। ऐसी अवस्था में शिष्टाचार छोड़ देने में मंगल दिखाई दिया। मैंने महात्माजी को एक हलका-सा धक्का दिया और उनके आगे पुलिस के घेरे में हो गया।

किसी तरह रेल के डिब्बे के पास जा पहुँचा, जिसमें महात्माजी यात्रा करने को थे। सेकेन्ड क्लास का रिजर्व किया हुआ डिब्बा पाँच सीट का था। उसमें बापू, बा, सरदार पटेल, श्री विठ्ठल भाई पटेल और महादेव भाई गये थे। मेरी अवस्था बुरी थी—परेशान और पसीने से तर। डिब्बे के अन्दर घुसकर पंखा खोला और फौरन बीच के बर्थ पर लेट गया। जब कुछ होश-सा हुआ तो श्री विठ्ठल भाई पटेल से कहा—अब मैं कैसे यहाँ से बाहर जाऊँ। उन्होंने सलाह दी—प्लेटफार्म के दूसरी ओर उतर कर रेलवे

स्टेशन पार करके गाड़ी खुलने के पहले ही मुझे चला जाना चाहिए। बाद में लौटने वाली भीड़ की रेल-पेल फिर असहनीय हो उठेगी।

समझदारी की बात मेरी समझ में भी आ गई। मैंने बापू से विदा ली और प्रार्थना की—लौटते समय भी मेरे यहाँ ही ठहरने की कृपा करें। बापू ने स्वीकार करके कहा—इस बार पाँच छः दिन ठहरूँगा।

कुछ ही पहले प्राण-संकट के बाद बापू के प्रतिवचन ने मेरी समस्त पीड़ा का प्रतिहार कर दिया।

बापू का पुनरागमन

ता० २३ दिसम्बर १९२६ के दिन दिल्ली में स्वामी श्रद्धानन्दजी की हत्या एक मुसलमान के द्वारा हो गई। इससे हिन्दुओं में मुसलमानों के प्रति रोष होना स्वाभाविक था। मैंने महात्माजी को गोहाटी में सूचित किया कि इस बार मौलाना मुहम्मदअली एवम् मौलाना शौकतअली आदि के अन्यत्र ठहरने का प्रबन्ध करने की कृपा करें। महात्माजी का उत्तर मिला कि पहले से ही ऐसा तै हो गया है।

गौहाटी कांग्रेस का अधिवेशन ता० २६,२७ और २८ दिसम्बर १९२६ को था। उसकी समाप्ति

के बाद ता० २९ दिसम्बर को महात्माजी गौहाटी से आकर पुनः मेरे यहाँ ता० २ जनवरी १९२७ तक रहे। इन दिनों की कुछ उल्लेखनीय घटनाएँ जो इस समय मुझे याद हैं नीचे लिखी जाती हैं।

महात्माजी के लिए जो कमोड रक्खा गया था उसकी सफाई के लिए एक मेहतर विशेष रूप से नियत था। उसे यह काम किसी दिन भी नहीं करना पड़ा। क्योंकि महात्माजी जब कमरे में से होकर आते थे तब कमोड पहले जैसा ही साफ मिलता था। मैंने इसका यह अर्थ निकाला कि महात्माजी सम्भवतः ड्रेन (Drain) टट्टीघर व्यवहार करते होंगे। क्योंकि उसी घर में कमोड भी रक्खा गया था।

मैंने महादेव भाई से कहा—क्या मैं कमोड हटा लूँ? उन्होंने बताया कि बापू कमोड का व्यवहार बराबर करते हैं। किन्तु उसे स्वयं साफ करके बाहर वे इसलिए निकलते हैं कि हो सकता है मकान के अन्दर मेहतर का आना परिवार के अन्य लोगों को

बुरा लगता हो। इसमें बापू को कष्ट नहीं होता। क्योंकि सफाई का यह कार्य बापू ने बहुत समय तक किया है। मैंने महादेव भाई को उलहना दिया कि आपसे पहले ही मेरी बात हो चुकी थी। मकान के अन्दर मेहतर के आने में मेरे यहाँ किसी को आपत्ति नहीं है। फिर बापू मेरे यहाँ मेहमान रहकर स्वयं पाखाना साफ करें, यह मेरे लिए असहनीय है। यदि महतर न होता या महतर के आने में आपत्ति होती तो मैं स्वयं यह कार्य करता। अब मैं बापू को कमोड साफ करने नहीं दूँगा।

मेरी बात का असर क्या होता! बापू अपना काम स्वयं ही करते रहे।

दो तीन दिन के बाद महात्माजी मेरे प्रबन्ध की बात ताड़ गये। मुझे बुलाकर उन्होंने पूछा—मेरे लिए अंगूर की कितनी पिटारियाँ आती हैं। उत्तर देने में मुझे संकोच हुआ। क्योंकि जानता था परिणाम वांच्छनीय न होगा। परन्तु दबाव में आकर पिटारियों की संख्या अनुमानतः बतानी ही पड़ी।

सुनकर महात्माजी ने कहा—आज से अंगूर बन्द ! उनके स्थान पर मुनक्का और किसमिस से काम चलेगा। मैं खिन्न हुआ। उन्हें मैंने समझाया भी। परन्तु उनके सामने चलती किसकी है। उनकी आज्ञा का पालन करना ही पड़ा। उन्हें यह सह्य न था कि उनके लिए अंगूर की पिटारियाँ ढेर की ढेर मँगाई जाँय और उनमें से छाँट कर थोड़े से दाने उनके लिए काम आवें। शेष अंगूर भी हम सबके काम आते थे। किन्तु यह सब उन्हें नापसन्द था।

एक दिन सबेरे के समय श्रीघनश्यामदास बिड़ला के तथा उनके भ्राताओं के बच्चे महात्माजी को प्रणाम करने अपने अभिभावक शिक्षक पंडित उदित मिश्र के साथ आये। कानों में हीरे के लौंग पहने थे। बापू ने विनोद करते हुए कहा—मर्द होकर औरतों की तरह गहने क्यों पहने हो ? उतार कर मुझे दे दो। उन सबने उन्हें फौरन उतार दिया तब उन्हें फिर से वापस करते हुए बापू ने बच्चों से कहा—घर जाकर पिता से कह देना कि ये गहने मुझे

दान में दे दें तुम्हें न पहनावें। उनके जाने के थोड़ी देर बाद बिड़ला पार्क से टेलीफोन आया। मैंने बात की। श्रीघनश्यामदास जी की ओर से पंडित उदित मिश्र, जो मेरे पूर्व परिचित थे कह रहे थे—चूँकि ये हीरे की लोंगें लड़कों के बाबा राजा बलदेवदासजी ने बनवाई हैं, इसलिए इनको घर में ही रखना ठीक रहेगा; परन्तु इनके मूल्य का द्रव्य यदि महात्माजी आज्ञा दें तो भेज दिया जाय। कृपया ये लोंगें न लें। मैंने बापू से संदेशा कहा तो उन्होंने मुझसे ही पूछा—तुम्हारी राय में क्या उत्तर दिया जाय? मुझे संकोच हुआ। भला उन्हें मैं क्या उत्तर बताऊँ? फिर भी मुझे कुछ कहना ही पड़ा। मैंने कहा—उन्हें यह उत्तर दिया जाय कि उन गहनों को आप अवश्य ही अपने पास रखिए। मेरा उद्देश्य तो केवल यह है कि बालकों को स्त्रियों की तरह नहीं सजाया जाय, उन्हें तो वीर बनना है। और इन गहनों की कीमत भेजने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि दान आप बराबर देते रहते हैं, जब रुपये की आवश्यकता होगी

कहा ही जायगा। बापू ने मेरा उत्तर पसन्द किया और टेलीफोन पर यही कहने की आज्ञा दी। दूसरे दिन से वे लड़के उन गहनों के बिना ही आने लगे।

महात्माजी जहाँ भी जाते थे मुझसे कहकर जाते थे और अधिकांश में मुझे साथ लेकर भी जाते थे।

एक दिन शाम को महाराजा नाटौर के यहाँ महात्माजी का निमन्त्रण था। श्रीचित्तरंजनदासजी की बहिन श्रीमती ऊर्मिलादेवी उनको वहाँ लिवा ले गई। मुझे भी महात्माजी अपने साथ में वहाँ ले गये। लौटते समय पैदल घूमने के लिए भी उन्हें जाना था। महाराजा की कोठी पर पहुँच कर महात्माजी उतरे, परन्तु मैं मोटर में ही बैठा रहा। वहाँ मेरी किसीसे जान पहचान न थी। और मैं जानता था ऊपर महारानी साहबा तथा दूसरी स्त्रियाँ भी होंगी। थोड़ी देर बाद महाराजा साहब के एक कारिन्दा मुझे बुलाने आये। मैंने इसे शिष्टाचार समझा, शिष्ट वचनों में ही उत्तर दिया—मैं यहाँ आराम से हूँ। वे लौट

गये। परन्तु तुरन्त ही एक दूसरे व्यक्ति आ पहुँचे जो पहले व्यक्ति से भी ऊँचे कर्मचारी थे। कहने लगे, आपके बिना वहाँ सब कार्य रुका है। यदि अब भी आप न चले तो स्वयं महाराजा साहब को आना पड़ेगा। आपका वक्तव्य उन्होंने सुन लिया है और कहा है आप अपने को किसी भी हैसियत का समझें, महात्माजी आपके यहाँ महमान तो हैं। और आज आपसे भी परिचय हो जायगा। ऊपर जाकर मैंने महाराजा साहब से अपने कारण विलम्ब के लिए क्षमा चाही। वहाँ वास्तव में मेरे कारण काम रुका हुआ था। उन्होंने कहा महात्माजी आपके मेहमान हैं, इसलिए आपके बिना यहाँ का कार्य कैसे चल सकता था। उन्होंने मुझे महात्माजी एवं अपने ही निकट बैठाया। वहाँ पर बहुत सी स्त्रियाँ भी उपस्थित थीं। दो चार पुरुष भी जो महाराजा के निकट सम्बन्धी रहे होंगे, थे।

इस बार मेरे यहाँ केवल महात्माजी, बा, महादेव भाई, कृष्णदासजी, रतिलालजी, और

सुब्बैयाजी ठहरे थे। अन्य सबके लिए महात्माजी ने अन्यत्र प्रबन्ध किया था। मुसलमान नेतागण जकरिया स्ट्रीट में किसी मुसलमान सज्जन के यहाँ ठहरे थे।

मौलाना मुहम्मदअली जिस दिन कलकत्ता से दिल्ली लौट रहे थे, उस दिन महात्माजी से भेंट करने के लिए मेरे घर पधारे। उनके साथ अन्य दो तीन मुसलमान सज्जन भी थे। मौलाना साहब महात्माजी से मिलकर जाने लगे तो मैं सामने पड़ गया। उन्होंने कहा—सलाम भाई, मेहरवानी रखना! मैंने भी सलाम की और उत्तर में कहा—मेहरवानी तो हम हिन्दुओं पर मुसलामानों को चाहिए। मेरा इतना कहना था कि उन्होंने प्रेम से मेरा हाथ पकड़ लिया। बोले—भाई, तुम ऐसा क्यों कहते हो?

मैंने कहा—मेरा कहना ठीक है। स्वामी श्रद्धानन्द को धोखा देकर मार डाला गया। मारवाड़ी स्त्रियों पुरुषों और उनके घरों को लूटा जाता है। हत्याएँ की जाती हैं। और इसके लिए

अपने सहधर्मियों को आप रोकते तक नहीं हैं। आपके मुँह से निन्दा का वाक्य तक नहीं निकलता। क्या यह सब उचित है ?

बात करने के लिए मौलाना साहब मुझे बगल के कमरे में खींच ले गये। बहुत सी बातें हमारे बीच में हुईं। अदब और स्नेह-शिष्टाचार के साथ। बातचीत मनोरंजक और लम्बी इतनी थी कि उनकी ट्रेन चूक गई। डेढ़ घंटे से अधिक समय कब बीत गया, इसका भान तक नहीं हुआ। मौलाना साहब के साथी भी चुपचाप सुनते रहे। महात्माजी बगल के ही कमरे में थे। बीच में रँगे हुए टाट तथा लकड़ी का ही पार्टीशन था। अतएव महात्माजी हमारी बात सुन सकते थे। मौलाना साहब के चले जाने पर उन्होंने मुझे बुलाया और हँसकर कहा— आज तो बहस खूब हुई।

ता० २ जनवरी १९२७ की शाम को महात्माजी मेरे यहाँ से सौदपुर खादी प्रतिष्ठान का उद्घाटन करने गये। मोटर में मैं ही अकेला उनके

साथ था। और सब लोग पहले ही चले गये थे। मोटर में महात्माजी ने पूछा—कितनी देर में पहुँचेंगे। मैंने कहा—आधे घंटा से चालीस मिनट तक। महात्माजी ने कहा—तब तो आधा घंटा सो लें। और वे पीछे की सीट पर तुरन्त सो गये। ठीक आधे घंटे में प्रान्टट्रंक रोड से सोदपुर की मोड़ आने से कुछ पहले ही महात्माजी जाग गये। मुझे देख कर आश्चर्य हुआ कि नींद भी इस प्रकार वश में कर ली जाती है।

खादी प्रतिष्ठान का समारोह समाप्त होने पर मैंने लौटने की आज्ञा चाही। बापू ने कहा— थोड़ा ठहर जाइए, कुछ काम है। बीस पचीस मिनट बाद उनके पास पहुँच कर मैंने फिर कहा, अँधेरा हो रहा है, और अँधेरा होने के पहले ही घर पहुँचना चाहता हूँ। आज्ञा दीजिए। उस समय बहुत से व्यक्ति वहाँ बैठे थे। महात्माजी ने कहा, आपके सुपुर्द एक काम किया जाता है। मैं डरा। जानता था, उनकी सेवा करने के लिए बड़े बड़े व्यक्ति तक उत्सुक रहते हैं।

मुझे सन्देह हुआ कि बापू का कार्य मेरे द्वारा सम्भव भी होगा अथवा नहीं। महात्माजी ने बताया, रंगून निवासी श्री मेहता मेरे बचपन के दोस्त हैं। उनका पुत्र रतिलाल मेरे साथ ही आपके यहाँ था। बिना सूचना दिये न मालूम कहाँ चला गया है। कलकत्ते में ही होगा। उसे ढूँढ कर अपने पास रखना। चार दिन बाद जब मैं कुमिल्ला से बनारस जाऊँगा तब उसे नैहाटी जंकशन पर मेरे सुपुर्द करना है। नैहाटी जंकशन पर हावड़ा बनारस एक्सप्रेस में एक डिब्बा बनारस तक रिजर्व कराने का काम भी उन्होंने मेरे जिम्मे किया। इस कार्य में तो कुछ अधिक कठिनाई न थी, किन्तु कलकत्ते जैसे शहर में रतिलाल भाई का पता लगाना मेरे लिए असम्भव था।

मैंने कहा—रतिलाल भाई को अच्छी तरह पहचानता भी नहीं हूँ। आपके रहने के समय इतनी अधिक भीड़भाड़ और आवाजाई लगी रहती थी कि किसीको पहचानने और किसी पर विशेष ध्यान देने का समय ही कहाँ था। रतिलाल भाई कहाँ

होंगे इसका अनुमान आप तक को नहीं है तो मेरे लिए उनकी खोज असम्भव समझिए। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जब वे आपके ही डेरा में नहीं रह सके तो चार दिन तक कैसे मेरे यहाँ रह सकते हैं।

महात्माजी ने हँसकर कहा—मैं जानता हूँ। आप यह काम कर सकेंगे। इस कार्य में जो कुछ खर्च हो मुझसे ले लेना।

जानता था, कार्य सामर्थ्य के बाहर है। हो सके तो बापू के आशीर्वाद से ही हो सकता है। रास्ते भर मोटर में चिन्ता में डूबा रहा कि रतिलाल को कैसे और कहाँ पाऊँ। यदि असफल हुआ तो महात्माजी को नैहाटी जंकशन पर क्या मुँह दिखलाऊँगा।

घर पहुँचकर बलवीरसिंह से सलाह ली। सोचा गया, रतिलाल धनी पिता के पुत्र हैं और गुजराती हैं; अतएव गुजराती मुहल्ले में ही किसी धनी व्यक्ति के यहाँ होंगे। कैनिंग और एजरा स्ट्रीट में

गुजरातियों की बस्ती है। वहाँ प्रत्येक गुजराती सज्जन के यहाँ देख आने के लिए मैंने श्री बलवीरसिंहजी को मोटर से भेजा। कह दिया; लोभ लालच देकर जैसे भी हो रतिलाल भाई को लाना है।

बलवीरसिंह ने रात के ग्यारह बजे लौटकर शुभ-समाचार सुनाया कि रतिलाल एजरा स्ट्रीट में एक गुजराती सज्जन के यहाँ हैं। सुबह आठ बजे आने का वादा किया है।

सुबह होते ही मोटर लेकर स्वयं वहाँ जा पहुँचा। रतिलाल से बहुत-सी बातें प्रेम पूर्वक हुईं और अपने साथ उसे ले आने में भी समर्थ हुआ। अब आगे के तीन चार दिन दूसरी कठिनाई के थे। डर था कि कहीं फिर से न चल दें। यह समय उनके साथ थियेटर, सिनेमा और ह्वाइट वे लेडला आदि अँग्रेजी दूकानों पर सैर सपाटे में बिताना पड़ा।

निर्धारित समय पर रतिलाल के साथ महात्माजी के लिए नैहाटी जंकशन स्टेशन पर

पहुँचा। नैहाटी में जूट आदि की बहुत-सी मिलें हैं। महात्माजी की ट्रेन आते ही सहस्रों की संख्या में वहाँ के मजदूर एकत्र हो गये। उनका चक्रव्यूह भेदकर महात्माजी तक जा पहुँचना मेरे लिए असम्भव था। महात्माजी के एक सेक्रेटरी श्री कृष्णदासजी मुझे दिखाई दिये। अपनी संरक्षता में उन्होंने वेटिंगरूम में महात्माजी तक पहुँचा दिया।

मैंने कहा—लीजिए, अपनी अमानत रकम रतिलाल भाई को सँभालिए बापू। अब आगे से ऐसा कठिन कार्य न सौंपें, यही प्रार्थना है।

महात्माजी ने पीठ ठोक कर शाबासी दी। बाद में उन्होंने रतिलाल से विनोद किया—तुम मेरे साथ चलोगे या खंडेलवाल के पास रहोगे?

रतिलाल ने मेरे पास ही रहने की इच्छा प्रकट की। बापू ने मुझसे कहा—रतिलाल को तो आपने खूब चेला बना लिया है। मैंने उत्तर दिया—तभी तो आपकी सेवा में उपस्थित कर रहा हूँ।

रेल का डिब्बा रिजर्व करने के सम्बन्ध में

फेयर ली प्लेस के हेड आफिस में जाना पड़ा था। वहाँ डिपुटी चीफ आपरेटिंग सुपरिन्टेन्डेन्ट से मिला। सेकेण्ड क्लास का एक डिब्बा रिजर्व करने में उन्होंने अपनी दिक्कत बताई कि फर्स्ट और सेकेन्ड के दो दो कम्पार्टमेंट अर्थात् चार कम्पार्टमेंट की केवल एक गाड़ी उस ट्रेन में रहती है। नियम के अनुसार ट्रेन सर्विस में डिब्बा रिजर्व नहीं किया जा सकता। अलग से दो डिब्बों की एक चार पहिया गाड़ी लगाई जा सकती है। किन्तु ऐसा करने में दो डिब्बों के रिजर्व के दाम देने पड़ेंगे। कुछ वार्तालाप के उपरान्त उन्होंने मुझसे प्रश्न किया—बताइए, ऐसी स्थिति में मेरी जगह स्वयं आप होते तो क्या करते? मैंने कहा—मेरे लिए तो सीधा उपाय था। जो नियम बनाये गये हैं, वे जनता की सुविधा के लिए हैं। सेकेण्ड क्लास में ही यात्री होते हैं। फर्स्ट क्लास में तो होते ही नहीं; डिब्बे प्रायः खाली जाते हैं। फर्स्ट का एक ही डिब्बा काफी है। अतएव मैं इस विशेष परिस्थिति में फर्स्ट के एक डिब्बे को सेकेण्ड बना देने की आज्ञा

देता। महात्मा गान्धी जैसे व्यक्ति की यात्रा से बढ़कर विशेषकर परिस्थिति हो ही क्या सकती है। इस नई व्यवस्था से रेलवे कम्पनी की प्रतिष्ठा के साथ जनता को भी कष्ट नहीं होगा।

मेरी वकालत काम कर गई। उक्त अधिकारी सज्जन ने अपने चीफ सुपरिन्टेन्डेन्ट से टेलीफोन पर बात करके फर्स्ट क्लास के एक डिब्बे को सेकेण्ड का बनाकर उसे महात्माजी के लिए रिजर्व कर दिया। टिकट तो कुमिल्ला से ही बनारस तक के ले लिये गये थे।

नैहाटी में महात्माजी ने मुझे एक पत्र डाक में छोड़ने के लिए दिया था। उसमें साप्ताहिक "यंग इण्डिया" के लिए आवश्यक लेख था। उक्त पत्र बंडेल जंकशन में हावड़ा-जबलपुर बम्बई मेल में उसी दिन छोड़ने के लिए सहेजा था। कारण यह कि उसी दिन न छोड़ा जाता तो "यंग इण्डिया" के अगले अंक में वह लेख प्रकाशित नहीं हो पाता। मैं मोटर में नैहाटी से बंडेल गया। वहाँ बापू की

आज्ञा का पालन किया, तब कलकत्ते लौटा।

बापू का वह छोटा-सा संस्पर्श जीवन का बड़े से बड़ा पुण्य है। वे ५-६ दिन बातों ही बातों में कहाँ गये, कैसे गये! और अनुमान तो अब भी पक्का नहीं कर सका हूँ कि जीवन के घट में सौभाग्य की जो वे कुछ बूँदे पड़ गई थीं, उन्होंने क्या माधुर्य प्रदान किया है। केवल माधुर्य की संज्ञा देकर उसके साथ पूरा न्याय नहीं किया जा सकता। समय के साथ माधुर्य में जो फीकापन आ जाता है, वह उसमें कहाँ आया? उस सौभाग्य को बरसों हो गये हैं, परन्तु आज भी वह आनन्द आज का ही आनन्द है।

उस स्वल्प समय में बापू के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानने समझने का अवसर आया। उनका अपने विरोधी के प्रति भी अत्यन्त उदार और प्रेमपूर्ण व्यवहार भूल जाने की वस्तु नहीं है। उनकी सहनशीलता, उनका शिष्टाचार और उनकी सभ्यता उनकी अपनी हैं। छोटों के प्रति भी उनका वह

आदर और सम्मान का भाव, उनकी उदारता, उनकी सत्यनिष्ठा और स्पष्टवादिता देखने के कितने ही प्रसङ्ग इस बीच में मिले। किसीको कष्ट न पहुँचे, यही प्रयत्न उनका रहा। निरासक्त और निर्मम होकर भी रुपये-पैसे के सम्बन्ध में उन्हें सदा जागरूक ही देखा। यह सब यहाँ उनकी प्रशंसा के लिए नहीं लिखा जा रहा है। उनके लिए मेरी प्रशंसा का क्या महत्व। यह तो अपने आप में ज्ञान की दो चार किरणें पहुँचाने का प्रयत्न है।

साबरमती आश्रम

गौहाटी कांग्रेस से लौटकर जब बापू मेरे यहाँ ठहरे थे, तभी एक दिन उन्होंने यह आज्ञा की थी कि मैं साबरमती आश्रम भी जाकर देखूँ। समय भी उन्होंने उसी समय ८ या ९ मार्च का निश्चित कर दिया था। कहा था, दौरे से वे इसी तिथि को आश्रम पहुँचेंगे; अतएव उसी समय मेरा वहाँ पहुँचना अच्छा रहेगा।

तदनुसार ९ मार्च १९२७ की प्रातःकालीन वेला में मैं सात बजे के लगभग अहमदाबाद स्टेशन पर पहुँचा। आश्रम के मन्त्री या महात्माजी को मैंने अपने आने की सूचना नहीं दी थी।

अहमदाबाद से साबरमती आश्रम चार मील के लगभग है। वहाँ तक मोटर में गया। रास्ते में साबरमती नदी का पक्का पुल पार करके म्यूनिसि-पैलिटी की चुंगी की चौकी पर चार आने महसूल में देने पड़े। उसी दिन लौटना हो तो फिर से यह महसूल नहीं देना पड़ता। आगे चलकर गुजरात विद्यापीठ की पक्की इमारत दिखाई दी। इसके बाद ही आश्रम की कच्ची और पक्की दूसरी इमारतें थीं। आगे जाकर अहमदाबाद का बड़ा जेलखाना था और एक मील दूर साबरमती रेलवे स्टेशन।

आश्रम के फाटक पर ही पता लग गया कि बापू ८ को ही वापस आ गये हैं।

मोटर और असबाब बाहर सकड़ पर ही छोड़कर आश्रम में प्रवेश करके महात्माजी के बंगले में गया। वे अपने ही कमरे में थे। जाकर उन्हें मैंने प्रणाम किया।

कमरे में एक दरी बिछी थी। उस पर एक छोटे गद्दे पर महात्मांजी बैठे थे। हँस कर बोले—खूब आये।

मैंने कहा—मैंने सोचा था, आपके पहुँचने के पहले पहुँच रहा हूँ, परन्तु आप और भी पहले आ गये हैं।

मेरे ठहरने का प्रबन्ध महात्माजी ने अपने सहकारी श्रीकृष्णदास को सौंपा। मुझसे कहा—अपना घर समझकर निःसंकोच भाव से सब प्रबन्ध करा लेना।

मैं कृष्णदासजी को जानता था। कलकत्ते में बापू के साथ वे भी थे। वे बंगाली सज्जन थे और बहुत दिनों से महात्माजी के निकट उनकी निजी सेवा में उन दिनों रह रहे थे।

साबरमती आश्रम निर्जन में खुला हुआ स्थान है। मैं कुछ थका हुआ था। समय दस के लगभग था। और धूप तेज भी थी। कई कपड़े तीन दिन की मुसाफिरी में गन्दे हो गये थे। मैंने चाहा, किसी धोबी का प्रबन्ध हो जाय तो उन्हें धुलवा लिया जाय। इस यात्रा में मेरे साथ कोई दूसरा साथी वा नौकर न था। मैं अकेला ही गया था। आश्रम

का जो हाल मैंने सुना था, उससे मैंने समझा था कि नौकर साथ ले जाने पर कहीं शर्मिन्दा न होना पड़े। मेरे नहाने का प्रबन्ध एक कमरे में कर दिया गया। उस कमरे में चमचमाते हुए ताँबे के कई बर्तन पानी से भरे रक्खे थे। साबुन भी था। स्नान-गृह साफ सुथरा और दिव्य दिखाई दिया। कुछ कुछ सर्दी का मौसम था, इसलिए मेरे कहने से वहाँ कुछ गरम पानी भी रख दिया गया था। मुझसे कहा गया, जो कपड़े धुलवाने हों उन्हें यहीं छोड़ दीजिये। मैंने कई कपड़े वहीं छोड़ दिये और अच्छी तरह स्नान करने में प्रायः सब बर्तन खाली कर दिये। मुझे ख्याल तक न था कि इन बर्तनों को कभी कभी स्वयं महात्माजी और कभी कभी पूजनीया बा भी साफ करती हैं। यह भी उस समय तक मैं नहीं जानता था कि यह स्नान घर स्वयं महात्माजी के स्नान करने का है। तीसरे पहर मैंने देखा कि मेरे कपड़े धुले-धुलाये महात्माजी के कमरे में उन्हींके कपड़ों के साथ अपने कमरे में रख लिए गये थे।

मैं जब तलाश करने गया तो बा ने वह कमरा बता दिया और अपने कपड़े ढूँढ़ कर ले आने की अनुमति दी। दूसरे कपड़ों में अपने कपड़े खो जाने में दिक्कत नहीं हुई। कारण यह कि आश्रमवासियों के सब के सब वस्त्र मोटी खादी के थे। उनके बीच में मेरे महीन विलायती वस्त्र अलग दिखाई देते थे। आगे चल कर मैंने देखा था कि आश्रम-वासियों को अपने वस्त्र छाँटने में कैसी कठिनाई होती है। परन्तु अपनी स्वतन्त्र विशेषता के कारण मुझे कभी उसका अनुभव नहीं करना पड़ा।

रहने के लिए मुझे जो कमरा मिला था, उसमें एक खाट थी, जिसमें खद्दर की तोशक और खद्दर की ही चादर थी। पानी के लिए भरा हुआ मिट्टी का एक घड़ा, एक लोटा और एक गिलास था। यह कमरा महात्माजी के रहने के बंगले के बगल वाले बंगले में था। पास ही आश्रम का कार्यालय था। सब बंगले अलग अलग और खुली जमीनों के साथ थे।

नहाने के बाद भोजन का नम्बर आया। कृष्णदासजी मुझे भोजन के लिए ले गये। उक्त भोजनालय में जो साधारण चौका—या जेनरल और कामन किचेन,—है, उसमें करीब चालीस आदमियों का भोजन हुआ। मैं एक पीढ़े पर बैठ गया। मेरे बाँये हाथ कृष्णदासजी बैठे। दाँयी ओर पीढ़े पर एक दुबले पतले, साँवले रंग के साधारण सज्जन थे। कुछ लोगों ने अपनी अपनी थाली स्वयं लेली, कुछ की थाली किसी और ने परोस दी। मैंने अपनी थाली आप नहीं ली थी, इसलिए परोसी हुई मिल गई। मेरी दाँयी ओर के सज्जन भी अपनी थाली ले आये। रोटी, दाल, एक तरकारी, गुड़ और दूध, बस यही भोजन था। दाल और तरकारी में मसाला नदारद। सिवा नमक के और कुछ नहीं। मुझे बचपन से ही सादे भोजन का अभ्यास है और अच्छा भी मुझे वही लगता है। अतएव भोजन आनन्दपूर्वक हुआ। भोजन समाप्त होने के बाद ही मेरे दाँये बैठे हुए महाशय मेरी जूठी थाली, कटोरी

और लुटिया अपने वर्तनों के साथ लेकर पानी के नल पर उन्हें साफ करने के लिए चले गये। मैंने, समझा, आश्रम का कोई निम्न कर्मचारी या नौकर होगा। इसके जिम्मे मेहमानों आदि के बर्तनों की सफाई का काम है।

भोजन के बाद मैं महात्माजी के पास गया। कहा—मैं दो दिन रहना चाहता हूँ। इस बीच में आश्रम की बाहरी और भीतरी सभी बातें देखकर समझ लेने की इच्छा है। यह काम अभी से आरम्भ करना चाहता हूँ। इसलिए किसी जानकार को साथ कर दीजिए, जो मुझे सब कुछ दिखा और समझा सके।

महात्माजी ने कहा—तुमको कम से कम छः दिन रहना पड़ेगा। और इतने समय में तुम शायद ही आश्रम को अच्छी तरह देख समझ सको। खैर, मैं तुम्हें आश्रम के सर्वेसर्वा, जीवन और प्राण, मेरे स्थान पर काम करने वाले मगनलाल गांधी को सहेजे देता हूँ। वे तुम्हें सब कुछ दिखा देंगे।

श्रीमगनलालजी आये और मैंने उन्हें देखा। यह तो वही सज्जन हैं, जो भोजन के समय मेरी दाँयी ओर बैठे थे। इन्हीं ने मेरे जूठे बर्तन साफ किये थे। मन ही मन मैं अत्यन्त लज्जित हुआ।

लगभग दो बजे श्रीमगनलालजी मेरे पास आकर मुझे आश्रम दिखाने ले गये। उस दिन से बराबर पाँच दिन तक उनके सहयोग से आश्रम देखता और समझता रहा। उन्होंने मुझे अपने छोटे भाई की तरह माना। उनका ऊँचा आदर्श उनके रहन सहन में, जीवन में, घुल मिलकर एक हो गया था। मेरे प्रति जो प्रेम उन्होंने प्रदर्शित किया, वह भूलता नहीं।

आश्रम के कार्यकर्ताओं और आश्रमवासियों से प्राइवेट इन्टरव्यूज और डिस्कशन की, वार्तालाप और बहस की अनुमति मैंने महात्माजी से ले ली थी।

काका साहब दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर, श्रीमान् जोशीजी, पंडित तोताराम सनाढ्य, श्रीयुत महादेव भाई आदि सज्जनों से घन्टों वार्तालाप

किया। आश्रम-वासियों में से कितने ही लोगों से भी बातचीत हुई। उनका मुझपर बहुत प्रभाव पड़ा और उनके प्रति मेरी श्रद्धा बहुत बढ़ गई। इससे पहले उनसे मिलने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला था।

आश्रम की दिनचर्या चार बजे प्रातःकाल के घंटे से प्रारम्भ होती थी। उस समय आश्रमवासी, स्त्री, पुरुष, बालक, बालिकाएँ बापू के निवास स्थान के सामने बालू बिछे हुए मैदान में एकत्र होते हैं। लगभग एक घंटे तक वहाँ पर प्रार्थना और भगवद्-भजन होता है। सात बजे फिर घंटा बजता है। सात से दस तक काम करने का समय है। ग्यारह बजे भोजन करने का घंटा बजता है। एक बजे फिर काम की घंटी होती है। एक से चार तक काम होता है। फिर छुट्टी की घंटी होती है। आठ घंटे काम करना सबके लिए अनिवार्य है।

पेशाब और पाखाने का प्रबन्ध आश्रम में बहुत सीधा सादा और उत्तम कोटि का है। हमारे

गाँवों में खुले मैदान में कहीं भी मल-मूत्र-त्याग की छुट्टी है । इसके कारण वहाँ गंदगी ही गंदगी दिखाई देती है । आश्रम में इस नित्य क्रिया के लिए स्थान नियत हैं । अतएव वहाँ के आसपास मीलों तक कोई गंदगी नहीं है । पेशाब करने की बालटी ऊपर से ढकी रहती है । उसमें इस प्रकार का छेद बना रहता है कि लघुशंका करने का मूत्र अन्दर चला जाता है और अन्दर की गन्दगी ऊपर से दिखाई नहीं देती । प्रातःकाल नित्य और कभी कभी शाम को भी चौबीस घंटे में एक या दो बार इन बाल्टियों को खेत में बनाये गढ़ों में उड़ेल कर साफ पानी से धो दिया जाता है और फिर मैदान में उन्हें धूप दी जाती है । पाखाने की बाल्टियों में भी मल त्याग के पहले और बाद में मिट्टी डालने की प्रथा है । प्रत्येक पाखाने में सूखी मिट्टी एक किनारे सन्दूक में रक्खी रहती है और लोहे के फरसे उठाकर डाली जाती है । इस नियम के कारण बाल्टी तथा टट्टी के कमरे साफ तथा दुर्गन्ध रहित

रहते हैं। नये आदमी को तो पता तक न चले कि यह टट्टी या पेशाब का कमरा है। पाखाने की बाल्टियों को भी खेत में गढ़ा खोदकर उसमें उड़ेल दिया जाता है और लम्बी झाड़ू से साफ करके पानी से धोने के बाद धूप में रख दिया जाता है। यह क्रिया इस प्रकार होती है कि घृणा नहीं होती। दोहरी बाल्टी रहती है। पहले दिन की साफ हुई बाल्टी अगले दिन अन्दर रख दी जाती है। आश्रमवासियों और कार्यकर्त्ताओं की बारी इस काम के लिए बँधी होती है।

आश्रम में किसी काम के लिए अलग से नौकर या सेवक नहीं हैं। आश्रम के कार्यकर्त्ता और आश्रमवासी स्वयं ही नौकर या सेवक भी हैं। यहाँ तक कि मेहतर या झाड़ू देने वाला भी दूसरा नहीं है।

भोजनालय में जात-पाँत का कोई भेद नहीं माना जाता। वहाँ पर सब मनुष्य एक जाति के हैं। सुबह के भोजन का उल्लेख ऊपर हो चुका है। सुबह का भोजन अन्दाजन साढ़े दस बजे और

शाम का अन्दाजन साढ़े पाँच बजे नियत है। शाम के भोजन में रोटी, साग, खिचड़ी, दूध और गुड़ होता है। प्रत्येक भोजन के पूर्व घंटा बजाकर समय की सूचना दी जाती है। छः या साढ़े छः बजे संध्या की प्रार्थना का समय है। प्रार्थना के बाद दिन भर के काम की हाजिरी और आलोचना होती है। किसी को कुछ शिकायत हो तो वह भी उसी समय सुनी जाती है। प्रार्थना के बाद चलते समय दाँत साफ करने की दातून बँटती है और नौ बजे रात को आश्रमवासी सो जाते हैं।

आश्रम में सब लोगों के लिए चरखा कताई अनिवार्य है। रुई धुनने, सूत कातने और कपड़ा बनने के काम मुख्य हैं। रुई में से विनौला निकालने के लिए काठ की बनी हाथ से चलने वाली मशीन जिसे औटनी कहते हैं, बहुत अच्छी है। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न स्थानों के तरह तरह के चरखों का संग्रह एक कमरे में किया गया है। प्रत्येक चरखे पर विवरण की चिट लगा दी गई है। सूत का

जाँच यन्त्र से की जाती है और इस कार्य के लिए अनुभवी कार्यकर्त्ता हैं। इन कार्यों की शिक्षा और अनुभव लेने के लिए देश और विदेश के लोगों का आवागमन लगा रहता है। मेरे सामने रंगून के एक साठ वर्ष के वृद्ध पारसी बेरिस्टर आये थे। पहले दिन जब वे कताई सीखने बैठे तो उन्हें विश्वास हो गया कि यह काम वे कभी न सीख सकेंगे। तीसरे दिन उन्हीं बेरिस्टर महोदय ने प्रसन्न होकर महात्मा जी से कहा—तीन दिन में ही मुझे आशातीत सफलता प्राप्त हो गई है और आशा है कि मैं बहुत जल्द चरखा चलाना सीख लूँगा। उन्हें चरखे से प्रेम हो गया और आश्रम के जीवन में रस आने लगा था। चरखा विभाग में कई उच्च कोटि के विद्वान मिले। कुछ लोग विलायत की ऊँची शिक्षा पाये हुए धनिक भी दीख पड़े। धनी और विदुषी स्त्रियाँ भी थीं।

आश्रम में स्त्री-पुरुष सहज ही से एक दूसरे से मिलते हैं। सब सबका सम्मान करते हैं। चरित्र में निर्मलता है। बालिकाएं और छोटी-बड़ी अवस्था

की स्त्रियाँ पुरुषों की ही भाँति निर्भयता से रहती और घूमती-फिरती हैं। एक दूसरे के प्रति सब में निश्छल प्रेम है।

वहाँ का नियम है कि किसी से चूक हो जाय तो सन्ध्या की प्रार्थना के बाद वह सबके सामने स्वयं ही प्रकट कर दे। शिकायत स्त्री के बारे में हो या पुरुष के बारे में, प्रकट सभी के सामने की जाती है। मेरी उपस्थिति में एक दिन प्रार्थना के बाद सबके सामने एक बहन ने, जो भारतवर्ष के एक विख्यात धनी नेता की पुत्री हैं, एक शिकायत पेश की और महात्माजी ने उस पर अपना निर्णय सुनाया। कोई काम प्राईवेट या छिपाव का नहीं है।

आश्रम वासियों के लिए ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य है। आश्रम में नव युवक दम्पति भी ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर ही रहते हैं। बिना इसके आश्रम में उनके लिए स्थान नहीं है।

सबेरे की प्रार्थना में मैं केवल एक दिन

अर्थात् पहले दिन ही उपस्थित रहा । चार बजे प्रातःकाल जब कि कुछ सर्दी रहती थी, उठने में मुझे कुछ कष्ट मालूम होता । पहले दिन की प्रातः प्रार्थना में जाने पर थोड़ी देर के बाद मैं यही मनाता रहा कि कब प्रार्थना पूरी हो और मैं यहाँ से भागूँ । क्योंकि नीचे तो बालू की ठंढ और ऊपर से ओस की ठंढी हवा थी । सायंकाल की प्रार्थना में मैंने किसी दिन नागा नहीं किया । सबेरे की प्रार्थना के बाद तुरन्त छुट्टी हो जाती है और सब कोई नदी में स्नान करने के लिए चले जाते हैं, किन्तु सन्ध्या समय प्रार्थना के बाद हाजिरी ली जाती है और किसने कितना सूत तैयार किया, यह लिखा जाता है । पहले पुरुषों के नाम फिर क्रम से स्त्रियों बालकों और बालिकाओं के नाम रजिस्टर में पढ़ कर पुकारे जाते हैं । पुरुषों की श्रेणी में बापू का तथा स्त्रियों की श्रेणी में बा का नाम सब से ऊपर लिखा है । बापू और बा के सूत कातने का परिमाण निर्धारित है । निर्धारित से अधिक

कातते हैं तो सूचना दे देते हैं। इसके बाद उपदेश होता है। मैं जितने दिन वहाँ रहा, बराबर महात्माजी भी वहाँ थे और प्रतिदिन अपने भ्रमण का वृत्तान्त या अन्य कोई उपयोगी विषय गुजराती भाषा में सुनाते थे। एक पंजाबी महाशय के बहुत आग्रह करने पर भी महात्माजी ने हिन्दी में कुछ नहीं कहा। कहा—कुटुम्ब और घर के बाल बच्चों में मातृभाषा का व्यवहार ही ठीक है।

महात्माजी के द्वितीय पुत्र श्री मणिलाल गांधी का विवाह मेरे आश्रम में पहुँचने के एक दिन पहले हुआ था। नव दम्पति ब्रह्मचर्य के साथ महात्माजी की आज्ञा लेकर एक सप्ताह के लिए आश्रम में ही रहे। महात्माजी ने विवाह के समय खद्दर की केवल एक सफेद साड़ी अपनी पुत्रवधू को दी थी। रुपया पैसा या गहना आदि कुछ भी नहीं दिया।

छः दिन लगातार देखा कि सुबह पाँच बजे से रात के नौ बजे तक महात्माजी को एक मिनट

की भी फुरसत नहीं है ।

सप्ताह में एक दिन महात्माजी मौन व्रत रखते हैं । रविवार को सन्ध्या के सात बजे मौन लेते हैं और दूसरे दिन सोमवार को उसी समय उसे छोड़ते हैं । जिस दिन प्रातःकाल मैं आश्रम में पहुँचा था, उसके पहले दिन सन्ध्या के सात बजे उन्होंने मौन छोड़ा था । और जिस दिन सन्ध्या के छः बजे मैं वहाँ से रवाना हुआ उसी दिन एक घंटे बाद उनका मौन आरम्भ होने को था । मेरे रहने के समय वहाँ बड़ी दूर दूर से अनेक सज्जन पहले से निश्चित समय के अनुसार आये थे । दो अँगरेज महिलाएँ, एक बहुत वृद्ध और एक नौजवान, बम्बई से अहमदाबाद केवल महात्माजी से मिलने और आश्रम देखने आई थीं । जब वे आई तब मैं भी महात्माजी के पास बैठा था । उनमें से नौजवान महिला ने बड़ी आशा से पूछा—महात्मा, ह्वेयर कैन आई फाइन्ड दि ट्रूथ ? (महात्माजी, सत्य कहाँ पा सकती हूँ ?) महात्माजी ने उत्तर दिया—

नो ह्वेयर (कहीं नहीं) उसका चेहरा उतर गया। कुछ और बात करने के बाद उस महिला ने अपना पाकेट बुक दिया और कहा—आप अपने हस्ताक्षर इसमें कर दीजिये। महात्माजी ने उस पाकेट बुक में जहाँ तक मुझे ख्याल है, ये ही शब्द लिखे थे—वन कैन फाइन्ड दि ट्रुथ इन वन्स ऑन हार्ट। अर्थात्—सत्य अपने ही हृदय में मिल सकता है।

एक दिन सन्ध्या समय आश्रमवासियों ने एक नाटक भी खेला था।

आश्रम में बढ़ई और लुहारगिरी के कारखाने भी हैं। आश्रम में बनी हुई खादी की बिक्री के लिए एक दुकान भी है।

आश्रम में जब महात्माजी रहते हैं, तब नित्य बहुत से व्यक्ति मोटरों पर आते जाते हैं। वहाँ टेलीफोन नहीं है। आश्रम में या साबरमती ग्राम में सवारी कोई भी नहीं मिलती। महात्माजी से मिलने के लिए आये हुए लोगों की सवारी पर उनके लौटने के समय शहर जाने का सुभीता हो जाता है।

आश्रम से अपने समय और सुविधा के अनुसार शहर जाने में पूरी कठिनाई है। इस प्रकार टेलीफोन सवारी आदि का प्रबन्ध न होने के कारण वहाँ की शान्ति में बाधा नहीं पड़ती।

वहाँ हिन्दी और अँगरेजी शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करने का अच्छा प्रबन्ध है। वातावरण ऐसा है कि प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बालिकाएं और बालक स्वयं ही नियमानुसार निर्धारित कार्य करके प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। आठ घंटे से कम काम करने को अपराध समझते हैं।

आश्रम में एक गोशाला भी है, जिसमें सत्तर-अस्सी गायें हैं। दूध, दही, मक्खन तथा घी सब वहीं होता है। जब कभी आवश्यक से अधिक दूध होता है तो बाहर बेच दिया जाता है। गोशाला के साथ बहुत सी बकरियाँ भी हैं, जो बहुत अच्छी रक्खी जाती है। अच्छा प्रबन्ध है। थोड़ी दूर एक चर्मालय है, जहाँ मरे हुए जानवरों के चमड़े से जूते आदि बनाए जाते हैं। कार्य में दक्ष एक

मदरासी सज्जन की अधीनता में यह कारखाना चलता है। कुएँ से जल निकालने का लिफ्ट नया आविष्कार है। उसे मैंने वहाँ चलते देखा।

आश्रम का कोई स्थायी फंड नहीं है। महात्माजी का ख्याल है कि स्थायी फंड होने से संस्था आलसी और निकम्मी हो जाती है। जो संस्था बराबर परिश्रम से अच्छा काम करती रहेगी, उसे धन की कमी न रहेगी।

वहाँ पर सुना कि असहयोग के जमाने में आश्रम में बहुत भीड़ हो गयी थी और स्थान की कमी पड़ गई थी। परन्तु आजकल वहाँ बहुत कम लोग हैं।

आश्रम का वातावरण बहुत पवित्र, तपोवन जैसा है। आगत जनों को वहाँ के निवासियों का प्रेम सहज ही वशीभूत कर लेता है। खेद है, वहाँ भी कभी कभी अवाञ्छित व्यक्ति जा पहुँचते हैं।

दो दिन के बाद अपने जूठे बर्तन मैं आप मलने लगा था। नदी पर जाकर कपड़े धोने, स्नान

करने और अपने आप अपने कमरे की सफाई कर लेने आदि में मुझे कठिनाई नहीं रह गई थी। स्वावलम्बन के इस प्रारम्भिक पाठ में मुझे रस आ गया था।

जो लोग आश्रम को एक दिन में ही देखकर लौट जाते हैं, उनका वहाँ का परिचय अधूरा रहता है। कुछ दिन निरन्तर रहे बिना वहाँ की यात्रा अधूरी रह जाती है। *

---

* मेरी साबरमती यात्रा का वर्णन बनारस से प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्र "आज" में सन् १९२७ के मार्च की २१ और २२ तारीख को प्रकाशित हुआ था। वहीं से इस परिच्छेद की सामग्री ली गई है।

विधवा विवाह का समर्थन

महात्माजी दिसम्बर १९२६ में कलकत्ते में मेरे यहाँ ठहरे थे । तब से लगभग दो बरस तक पुलिस की तीक्ष्ण दृष्टि मेरे ऊपर लगी रही । कलकत्ते में जब होता तब कलकत्ते में और बनारस में अपने गणेश महाल वाले मकान में जब होता तब वहाँ मेरे मकान के सामने एक व्यक्ति बराबर डटा रहता था । मुझे इसके कारण कोई कठिनाई नहीं होती थी । वरन् कुछ कुछ कुतूहल ही होता था । यह क्रम कदाचित् इसलिए आगे चलकर भंग हो गया कि मैं राजनैतिक कार्यकर्त्ता न था । सामाजिक कार्यों में अवश्य मेरी रुचि थी ।

ता० २२ जनवरी १९२७ को हमारी खंडेलवाल वैश्य जाति में एक विधवा-विवाह मेरे प्रोत्साहन

से हुआ। लड़का कलकत्ते का लड़की कानपुर की। लड़की का पहला विवाह ९ वर्ष की अवस्था में हुआ था और कुछ ही महीनों बाद विधवा हो गई थी। इस विवाह के समय वह चौदह बरस की थी।

पहली फरवरी १९२७ में महात्माजी पुनः कलकत्ते पधारे। इस बार वे सेठ जीवनलालजी एल्यूमिनियम के व्यापारी के यहाँ ठहरे थे। सात आठ घंटे से अधिक नहीं रहे। मैंने जाकर उनसे भेट की और इस विधवा-विवाह के सम्बन्ध की सब बातें उन्हें बताई। प्रसन्न होकर महात्माजी ने मुझे बधाई दी। इस सम्बन्ध में उनका लिखित वक्तव्य मैंने चाहा। उन्होंने मुझे एक पत्र लिखा जो निम्नलिखित है—

भाई श्री दामोदर दास,

जो विधवाविवाह की बात आपने मुझे कही उसको मैं विधवाविवाह नहीं समझता हूँ क्योंकि ९ वर्ष की लड़की विवाह के लायक ही नहीं है। इस विवाह के लिए मैं खंडेलवाल जाति को

धन्यवाद देता हूँ, कन्या के पिता ने पुण्य कर्म किया है। मेरी आशा है कि दूसरे माता पिता भी जिनके यहाँ ऐसी लड़कियाँ हों इसका अनुकरण करेंगे।

कलकत्ता आपका

पो० कृ० १४ मोहनदास गांधी

इस पत्र के ब्लाक बनवाकर मैंने दैनिक पत्रों में प्रकाशित होने के लिए दे दिये। दूसरे ही दिन वह बड़े बड़े शीर्षकों से प्रकाशित हुआ। "विश्वमित्र" ने मोटे मोटे टाइपों में समाचार इस प्रकार सजाया था—"विधवाविवाह पर खंडेलवालों को महात्माजी का धन्यवाद, खंडेलवालों में विधवाविवाह महात्माजी द्वारा समर्थन।" "स्वतन्त्र" ने भी ऐसा ही किया। उसके शीर्षक थे—"खंडेलवालों में विधवाविवाह, महात्माजी का मत।" अखबार बेचने वाले हाकरों ने पुकार पुकार कर चिल्लाना शुरू किया। उस दिन कलकत्ते के बड़े बाजार में इन दैनिकों की बिक्री बहुत बढ़ गई थी। भारतवर्ष के अन्य समाचार पत्रों ने भी महात्माजी का यह

पत्र इसी प्रकार प्रकाशित किया था ।

इस विधवाविवाह के कारण और विशेषकर महात्माजी के पत्र के कारण बड़ी हलचल हुई । हमारी जाति में तो जैसे भूकम्प आ गया, किन्तु तभी से उसमें विधवा-विवाह की जड़ जम गई है । तब से लेकर अब तक कितने ही विवाह हो गये हैं । उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों को अब जातीय बहिष्कार का सामना नहीं करना पड़ता । ऐसे विवाह इस प्रकार हो जाते हैं जैसे कोई बात ही न हुई हो । किन्तु उस समय की दशा दूसरी थी । बहुत समय तक बहुतों के बीच आपस में गाली गलौज, वकीलों के नोटिस, अदालत में फौजदारी मुकद्दमे आदि हुए थे । विवाह शादियों में आपस के वैमनस्य भी कम नहीं हुए । मेरे साथ और मेरे सहयोगियों के साथ सामाजिक व्यवहार करने में कुछ समय तक कुछ लोगों को हिचकिचाहट रही । परन्तु अब तो अवस्था ऐसी है कि जो लोग विरोधी थे वही समर्थक बन गये हैं ।

सन् १९२८–२९

सन् १९२८ में नं० ५० हरिश मुकर्जी रोड का मकान छोड़कर रासविहारी एवेन्यू में अपने नये बने हुए मकान में मैं चला आया।

इसी साल के दिसम्बर में कलकत्ते में कांग्रेस थी। महात्माजी उसमें पधारे थे। मैं उनसे मिला और अपने यहाँ पधारने के लिए उन्हें निमन्त्रण दिया। उन्होंने कहा—कलकत्ता छोड़ने से पहले एक वार किसी समय आऊँगा। मैंने समय निर्धारित करने की प्रार्थना की। मुझे डर था, कहीं ऐसे समय न पहुँचें, जब मैं घर पर न होऊँ। यह इच्छा भी मैंने प्रकट की कि मैं स्वयं आकर आपको ले जाना चाहता हूँ।

उन्होंने कहा—समय निर्धारित करना असम्भव है। कार्यों में व्यस्त होने के कारण।

मैंने अपने नये मकान का पता उन्हें दे दिया।

इसके बाद एक रात के ९ बजे घर के नौकर ने सूचना दी कि मोटर पर कोई आया है। मैंने विशेष ध्यान नहीं दिया। कहा—कमरे में बैठाकर नाम पूछ आओ। नौकर बाहर गया और दौड़ता हुआ आया कि महात्मा गांधी आये हैं! मैं घबरा कर दौड़ा और उन्हें सादर लिवा लाया। मुझे आश्चर्य हुआ कि केवल पता-ठिकाना बता देने से रात में भी मेरे यहाँ पहुँच गये हैं। मेरी जिज्ञासा के उत्तर में उन्होंने बताया—एक जगह पूछ-ताँछ करनी पड़ी थी। कोई दसेक मिनट बैठे। मुझसे पूछा—खादी अभी समझ में आई कि नहीं। मैंने कहा—बिलकुल नहीं।

बापू ने पूछा, विचित्र प्रकार से, बड़े प्रेम से,-
"क्या खादी का टुकड़ा सिर्फ जूता पोंछने के लिए भी अच्छा नहीं है?

उनके व्यवहार ने निःशंक बना दिया था। उत्तर में मैंने हँसकर नाहीं करदी ! बात वास्तव में ऐसी ही थी कि खादी में अब तक मैंने कोई आकर्षण न पाया था।

सन् १९२९ के मार्च के अन्त में महात्माजी पुनः मेरे यहाँ इसी नये मकान में बालीगंज के रासविहारी एवेन्यू में ठहरे थे। उन पर बंगाल गवर्नमेन्ट द्वारा कलकत्ता पुलिस कोर्ट में मुकद्दमा चलाया गया था। एक सार्वजनिक पार्क में जिसका नाम उस समय मिर्जापुर पार्क था, अब श्रद्धानन्द पार्क है—विदेशी वस्त्र जलाने तथा आपत्तिजनक भाषण करने के लिए। उस समय बिहार के राजेन्द्र बाबू, मथुरा बाबू तथा कुछ अन्य महानुभाव भी मेरे यहाँ ठहरे थे। पुलिस कोर्ट में मैं भी महात्माजी के साथ गया था।

इस बार मैंने महात्माजी के लिए बिछौना, चादर, तौलिया आदि खादी के ही रक्खे थे। किन्तु मेरे मन में जैसे यह भाव था कि यह दिखावा मात्र

है, अभी तक खादी समझ में तो आई नहीं है। महात्माजी से भी मैंने कह दिया कि यह आपकी प्रसन्नता के लिए किया गया है। आपके जाते ही खादी के वस्त्र हटा दिये जाँयगे।

महात्माजी चुप रहे।

स्नानघर में महात्माजी के व्यवहार के लिए पियर्स सोप रक्खा था। स्नान के बाद उन्होंने मुझसे कहा—पियर्स सोप क्यों व्यवहार करते हो? मैंने उत्तर दिया—मैं इसी को सर्वोत्तम मानता हूँ। इस पर उन्होंने बताया—बम्बई का गोदरेज साबुन बहुत उम्दा होता है।

मेरी यूरोप-यात्रा

इस समय विलायत जाने की मैंने सब तैयारी कर ली थी। मैंने महात्माजी से कहा तो उन्होंने विशेष पसन्द नहीं किया। ता० ५ मई १९२९ को कलकत्ता से मद्रास-कोलम्बो होकर ओरियन्ट लाइन के ओरामा नामक जहाज से मैंने विलायत जाने के लिए प्रस्थान किया। लगभग पाँच महीने मेरी यह यात्रा रही। इंग्लैंड के बाहर होटल वाले ठहरने वालों को साबुन नहीं देते। अतएव अपना ही साबुन व्यवहार में लाना पड़ता है। मेरे पास जो साबुन था वह जर्मनी के हैम्बर्ग नामक स्थान तक चुक गया। वहाँ के होटल के मैनेजर से इँग्लैंड का बना हुआ

पियर्स साबुन मँगा देने को कहा। आज्ञानुसार उत्तम साबुन की एक टिकिया आ गई। इसके लिए भारतीय सिक्के के हिसाब से पन्द्रह आने मुझसे लिये गये। मुझे आश्चर्य हुआ और क्रोध भी आया। क्योंकि स्वदेश में इस साबुन की तीन टिकियाँ मुझे एक रुपया एक आने में मिलती थीं। जो वस्तु भारतवर्ष में छः आने से भी कम में मिलती थी, उसे हैम्बर्ग में चार या पाँच आने में मिलना उचित था। मैंने समझा, होटल के नौकर चोर हैं या फिर दूकानदार ठग हैं। इस बात की जोरदार शिकायत मैंने होटल के मैनेजर से की।

उसने कहा—मेरे नौकर और यहाँ के दूकानदार दोनों ईमानदार हैं।

मेरा क्रोध बढ़ गया। कहा—तो क्या मैं झूठा हूँ?

बात बढ़ गई। होटल के मैनेजर ने दूकानदार को टेलीफोन पर बुलाया। उसने उत्तर दिया—साबुन के दाम ठीक लिये गये हैं।

होटल के मैनेजर के साथ मैं उसी दूकानदार के यहाँ गया। मैंने अपना पत्र उसके सामने रक्खा। उसने दुःख और आश्चर्य के साथ कहा—समझ में नहीं आता, इतना फर्क क्यों है? भला कहाँ यह बट्टी इतनी सस्ती मिलती है!

मैंने बताया—भारतवर्ष में! साथ ही कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली आदि शहरों के नाम भी मैं गिना गया।

उसने पूछा—क्या ब्रिटिश इंडिया से मेरा तात्पर्य है?

"हाँ!"—मैंने उसी प्रकार कहा।

वह बोला—तब ठीक है। यह इंगलेन्ड की बनी हुई वस्तु है, इसलिए इंगलेन्ड से शासित ब्रिटिश इन्डिया में तो यह सस्ती मिलेगी ही। किन्तु आपको जानना चाहिए कि यह देश जर्मनों का है। यहाँ पर विदेशी वस्तुओं पर कड़ी चुङ्गी लगती है। ऐसा इसलिए है कि दूसरे देशों की वस्तुएँ यहाँ सहज ही न बिक सकें। जर्मनी में कहीं भी इससे उत्तम

जर्मनी का बना साबुन आप दो या तीन आने में खरीद सकते हैं।

मैंने पूछा—क्या पियर्स साबुन से भी अच्छा कोई साबुन होता है ?

दूकानदार ने कहा—अवश्य होता है। ब्रिटिश इंडिया में पियर्स जिस मूल्य में मिलता है, उससे आधे में उससे उत्तम साबुन की बट्टी यहाँ यहीं की बनी मिल सकती है।

मैंने जानना चाहा—यदि आपका कथन ठीक है तो बताइए कि कौन ऐसा मूर्ख है जो तीन आने की उत्तम वस्तु छोड़कर पन्द्रह आने की मध्यम वस्तु खरीदेगा।

उसने कहा—इंग्लैन्ड या बाहर के जो अँग्रेज जर्मनी में हैं या आप जैसे सज्जन जो इंग्लैन्ड से शासित देश में रहते हैं। वे लोग पियर्स सोप ही खरीदते हैं। जर्मनी के सम्बन्ध में भी यही बात है। इंग्लैन्ड में वे भी अधिक दाम देकर अपने ही देश की वस्तु खरीदते हैं।

मुझे जान पड़ा, जैसे मेरी आँखों पर पड़ा हुआ पर्दा उठ गया। उस दूर देश जर्मनी में बापू की बात समझने के लिए मुझे मार्ग दिखाई देने लगा।

पियर्स साबुन की मेरी वही अन्तिम खरीद थी। इसके बाद गोदरेज साबुन ही मेरे व्यवहार में आने लगा।

स्वदेश में समाचार पत्रों के अवलोकन से, देश के अनेक नेताओं, विद्वानों से वार्तालाप करने से, एवम बापू की हस्ताक्षर युक्त दी हुई 'हैन्ड वीविंग एन्ड हैन्ड स्पिनिंग' पुस्तक पढ़ने से खादी की बात मैं बराबर सोचता रहा। मैं यह भी सोचता था कि निःसन्देश खादी में कोई बात होगी क्यों कि इतने बड़े बड़े नेता व बुद्धिमान लोग इस पर जोर देते हैं। परन्तु मेरे मन में कोई बात निश्चित नहीं बैठती थी इस लिये मुझे व्याकुलता का अनुभव होता था। अब और हैम्बर्ग वाली घटना से बात समझ में आई और चित्त को शान्ति मिली।

इस यूरोप यात्रा में मैं जनेवा भी गया था, एक दिन मैं सड़क पर पैदल आ रहा था तो एक सज्जन ने मुझे रोक कर हिन्दी में वार्तालाप करना आरम्भ किया। उन्होंने मुझसे कहा कि आप भारत-वासी ज्ञात होते हैं और मैं भी आपके ही देश का हूँ। शकल सूरत से मुझे ये युरोपियन ज्ञात हुए। मैंने नाम पूछा तो उन्होंने जब अपना नाम श्यामजी कृष्ण वर्मा कहा तो मुझे उनके सम्बन्ध में समाचार पत्रों में पढ़ी हुई बातें याद आ गईं। वे मुझे अपने घर ले गये। वहाँ उनकी धर्मपत्नी श्रीमती भानुमति देवी के दर्शन हुए। दो कमरों में हिन्दी एवं संस्कृत की पुस्तकों, पत्रों, का ढेर पड़ा था। वे कहने लगे कि ये अलभ्य और अमूल्य ग्रन्थ कोई योग्य भारतवासी सुरक्षित रखें तो बड़ा अच्छा हो। बापू के प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी। परन्तु वे बापू के अहिंसा सिद्धान्त से सहमत नहीं थे।

खादी की बात समझ में आई

हैम्बर्ग के होटल में लौटकर वहीं से मैंने बापू को एक पत्र लिखा—"बम्बई पहुँच कर सबसे पहले आपके दर्शन के लिए आश्रम में पहुँचना चाहता हूँ। अपने प्रोग्राम की सूचना दीजिए कि अगस्त के अन्त में आप कहाँ रहेंगे।"

घर को भी मैंने सूचना दी कि खादी के वस्त्रों का एक पार्सल मुझे एडन में ही टामस कुक कम्पनी के द्वारा मिलना चाहिए। मैंने निश्चय किया था कि विदेशी वस्त्रों के साथ बम्बई में जहाज से न उतरूँगा।

बापू का उत्तर मिल गया—साबरमती आश्रम में ही रहूँगा। आप आ सकते हैं। बीमार हूँ।

खादी के वस्त्रों का डाक पार्सल मुझे एडन में ही मिल गया। बम्बई में मैं पी० एन्ड ओ० कम्पनी के रावलपिन्डी नामक जहाज द्वारा अगस्त के अन्त में सुबह के चार बजे के लगभग पहुँचा। मैं खादी की धोती, कुर्ता और टोपी पहनकर तैयार हुआ। सहयात्रियों से मैंने दो दिन पहले ही कह दिया था कि अपने कई हजार मूल्य के विदेशी वस्त्र, नेकटाई, कालर आदि जहाज पर ही छोड़ दूँगा। उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने निर्णय दिया कि यह पागलपन है। किसी किसी ने परामर्श भी दिया कि घर ले जाकर किसी को दे देना। मेरे सहयात्रियों में मिस्टर अब सर गुरुनाथ व्यावर, मिस्टर डी० वी० रेगे आई० सी० एस०, मिस्टर कुलकर्णी आदि उच्च सरकारी अफसर फर्स्ट क्लास में थे। ये लोग इंग्लैन्ड से उसी जहाज से लौटे थे। सबने मेरा विचार मूर्खतापूर्ण समझा। यह भी जान पड़ा कि उन्हें मैंने नाराज कर दिया है। परन्तु मेरा निश्चय पक्का हो चुका था। मैंने अपना मत प्रकट किया कि जिस

वस्तु को मैंने त्याज्य कर दिया है, जो मेरी दृष्टि में रद्दी है, उसे घर ले जाकर वहाँ किसी दूसरे को दे नहीं सकता।

जहाज के यूरोपियन खलासियों और नौकरों को बुलाकर अपने वे समस्त वस्त्र, जूते और टोपियाँ मैंने वहीं वितरित करदीं। अपने दूसरे आवश्यक सामान के साथ मैं बम्बई में जहाज से उतरा।

पुनः आश्रम में

उसी दिन अहमदाबाद जाने वाले मेल से रवाना होकर दूसरे दिन साबरमती पहुँचा। बापू बीमार और कमजोर थे। कोई बीस मिनट उनके पास ठहरा और थोड़े में अपनी विलायत यात्रा का हाल सुनाकर मैंने कहा—खादी के विषय में आपको मुझे समझाने की आवश्यकता अब नहीं रही। मेरी समझ में बात आ गई है।

विदेश में बहुत कुछ देखा-सुना था। वहाँ की अनेक प्रकार की बातों ने स्वदेश को और बापू की बात को समझा देने में बड़ी सहायता की। खादी का महत्त्व मेरे मानस-पटल पर स्पष्ट हो उठा था। किन्तु उन बातों का उल्लेख करने के लिए यहाँ

स्थान नहीं है। उन्हें तो अलग से लिखने की आवश्यकता होगी।

बापू ने काका साहब कालेलकर से कहकर गुजरात विद्यापीठ में मेरे भाषण का प्रबन्ध किया था। यह बात मुझे तब मालूम हुई जब काका साहब मुझे बुलाने आये। मैंने निवेदन किया—मैं व्याख्यान देना नहीं जानता। मेरे वहाँ जाने से क्या होगा? काका साहब ने कहा—बापू की आज्ञा से वहाँ सब लोग एकत्र हो गये हैं। अब आपका न जाना ठीक न होगा।

लाचारी थी। मुझे विद्यापीठ की सभा में उपस्थित जनों को अपनी यूरोप यात्रा के अनुभव बताने पड़े। उन प्रश्नों के उत्तर भी दिये जो मुझसे वहाँ पूछे गये। अन्त में यह जानकर मुझे सन्तोष हुआ कि मैं लोगों को सन्तुष्ट कर सका।

उसी दिन सायंकाल बापू को प्रणाम करके वहाँ से चल पड़ा।

परिशिष्ट

सन् १९३० में मैं पुनः साबरमती आश्रम में गया था और ५, ६ दिन वहाँ रहा। बापू उस समय जेल में थे। जेल से ही उनका पत्र मिला। जिसमें लिखा था—"आश्रम में थोड़े दिन भी रह गये, अच्छा किया। और भी जाकर रहिए।"

जनवरी सन् १९३४ में मैंने कलकत्ते में अपनी समस्त जायदाद बेच डाली और कलकत्ता छोड़ दिया। उसकी सूचना मैंने बापू को भी दी। डाक द्वारा उनका उत्तर इस प्रकार मिला—

भाई दामोदरदास,

एक भी अपना मकान नहीं रहा इसलिए धन्यवाद।

बापू का आशीर्वाद।

ता० २१-२-३४

बापू की इच्छा थी कि मेरी बड़ी पुत्री आयुष्मती कृष्णादेवी बी० ए० का विवाह स्वजाति में न होकर अन्तर्जाति में हो। बापू ने सेठ जमनालालजी बजाज के ज्येष्ठ पुत्र श्री कमलनयन का नाम इस सम्बन्ध में सुझाया था। कमलनयनजी उस समय विलायत गये हुए थे और मेरे परिवार के लोगों को तथा स्वयं मेरी पुत्री को भी स्वजाति में ही विवाह पसन्द था। इसलिए जब पूर्ण सामाजिक सुधारों के साथ स्वजाति में ही विवाह का निश्चय हो गया, तब बापू और सेठ जमनालालजी ने भी स्वीकृति दे दी।

ता० ११ मार्च १९३४ को मेरी उक्त बड़ी पुत्री और द्वितीय पुत्री के विवाह एक साथ

बनारस में होने निश्चित हुए। बरातें दिल्ली और बरेलीसे आने को थीं। इस अवसर पर मैंने बापू को तथा सेठ जमनालालजी और श्रीराजेन्द्रप्रसाद जी को भी निमन्त्रित किया। बापू का उत्तर मिला कि बनारस आना तो असम्भव है, पर मैं उसी तारीख को मुगलसराय होते हुए पटने जा रहा हूँ। मुगलसराय में वर-कन्याओं सहित मिलो। पटने से राजेन्द्र बाबू और सेठ जी भी जो उस समय वहीं थे मेरे यहाँ पधारे थे। उनके साथ मैंने उक्त दोनों वरों और कन्याओं को ले जाकर मुगलसराय में बापू से मिलाया। बापू ने शुभाशीर्वाद दिये। ये दोनों विवाह खंडेलवाल जाति में सम्पूर्ण सुधारों के साथ पहले ही पहल हुए थे। इसलिए बापू एवं अन्य नेताओं के शुभाशीर्वाद की चर्चा समाचार पत्रों में भी बहुत हुई। खंडेलवाल जाति के मुख्य पत्र में तो विरोध और समर्थन मूलक चर्चा लगातार एक साल तक चली। अन्त में उन सुधारों को लोगों ने पसन्द भी किया, परन्तु उन्हें पूर्ण रूप से

स्वीकार कर लेने का साहस उन्हें नहीं हुआ। फिर भी बापू के समर्थन के कारण कितने ही सुधार हमारी जाति में चालू हो गये हैं।

सन १९३५ में मैंने बापू को पत्र लिखा,—मुझे उपदेश दीजिए कि मैं अब क्या करूँ?

उत्तर में आये हुए उनके कार्ड की प्रतिलिपि नीचे ज्यों की त्यों दी जाती है :—

भाई दामोदरदास,

मैं उपदेश भी दूं। अच्छा सब मजदूरी करो और ईश्वर जो देवे इतने में सन्तुष्ट रहो।

वर्धा ६-४-३५ बापू का आशीर्वाद

बाद में दो वार वर्धा जाने का सौभाग्य भी मुझे मिला। सेठ जमनालाल जी के यहाँ ठहरकर बापू के दर्शन किये। बापू का सम्पर्क देश और विदेश के अगणित व्यक्तियों से है। आश्चर्य की बात है कि सबके प्रति प्रेम निभाकर कैसे वे सबकी याद रखते हैं, और विशेषकर मुझ ऐसे साधारण व्यक्ति की !
